# धर्मदूत

वर्ष १५
अंक ४
जुलाई
१९५०

महाबोधि सभा का मुखपत्र

एक प्रति ।=)
वार्षिक चन्दा ३)
आजीवन ५०)

# विषय-सूची

| विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. बुद्ध वचनामृत | ... | ... | ८९ |
| २. बौद्ध धर्म से ही मानव कल्याण—श्री बलाईचन्द बोस एम० ए० | | ... | ९० |
| ३. भगवान् बुद्ध के सन्देश—श्री एन० एन० घोष एम० ए० | | ... | ९० |
| ४. भिक्षु उत्तम—भदन्त आनन्द कौसल्यायन | | ... | ९२ |
| ५. महान् पुरुषों के ध्यान से मानसिक लाभ—प्रो० लालजीराम शुक्ल | | ... | ९५ |
| ६. बुद्ध का कर्मवाद—भिक्षु धर्मरक्षित | | ... | ९७ |
| ७. मूलगन्ध कुटी विहार के भित्ति-चित्र—श्री बी० एन० सरस्वती | | ... | १०१ |
| ८. तथागत का धर्मराज्य | ... | ... | १०३ |
| ९. नये प्रकाशन | ... | ... | १०६ |
| १०. सम्पादकीय | ... | ... | १०७ |
| ११. बौद्ध जगत् | ... | ... | १०८ |

---

## धर्म-दूत" के नियम

१—धर्मदूत भारतीय महाबोधि सभाका हिन्दी मासिक मुखपत्र है। "धर्मदूत" प्रति पूर्णिमा को प्रकाशित होता है।

२—"धर्मदूत" के ग्राहक किसी भी मास से बनाये जा सकेंगे।

३—पत्रव्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या एवं पूरा पता लिखना चाहिये, ताकि पत्रिका के पहुंचने में गड़बड़ी न हो।

४—लेख, कविता, समालोचनार्थ पुस्तकें (दो प्रतियाँ) और बदले के पत्र सम्पादक के नाम तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र और चन्दा व्यवस्थापक के नाम पर भेजना चाहिए।

५—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने, घटाने-बढ़ाने या संशोधन करने का अधिकार सम्पादक को है। बिना डाकखर्च भेजे अप्रकाशित कविता व लेख लौटाये न जा सकेंगे। जिस अङ्क में जिनका लेख व कविता छपेगी वह अङ्क उनके पास भेज दिया जायगा।

६—"धर्मदूत" में सिर्फ बौद्धधर्म, कला, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्व आदि सम्बन्धी लेख ही प्रकाशित किये जा सकेंगे।

७—किसी लेखक द्वारा प्रकटित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

८—धर्म-दूत का वार्षिक मूल्य ३) और आजीवन ५०) है।

व्यवस्थापक—
"धर्मदूत" सारनाथ (बनारस)

# धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवल-परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग, ( विनय पिटक )

'भिक्षुओ ! बहुजन के हित के लिये, बहुजन के सुख के लिए, लोकपर दया करने के लिये, देवताओं और मनुष्यों के प्रयोजन के लिये, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्था में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।'

सम्पादकः—त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित

| | | | |
|---|---|---|---|
| वर्ष १५ | सारनाथ, जुलाई | बु० सं० २४९४ / ई० सं० १९५० | अङ्क ४ |

## बुद्ध-वचनामृत

### शील के गुण

"भिक्षुओ ! तीन प्रकार के सुखों को चाहनेवालों को चाहिए कि वे शील की रक्षा करें। कौन से तीन ? ( १ ) मैं प्रशंसित होऊँ, ( २ ) मुझे भोग-पदार्थ प्राप्त हों, ( ३ ) काया को छोड़ मरने के बाद सुगति-स्वर्ग-लोक में उत्पन्न होऊँ।" ( इतिवुत्तक ७६ )

"चन्दन, तगर, कमल, या जूही-इन सभी की सुगन्धियों से शील की सुगन्ध बढ़कर है। यह जो तगर और चन्दन की गन्ध है। वह अल्पमात्र है। शीलवानों की उत्तम सुगन्ध देवताओं तक में फैलती है।

दुःशील और चित्त की एकाग्रता से हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन भी श्रेष्ठ है।"

( धम्मपद ४, १२ )

"सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं।"

शील ही कल्याणकर है, लोक में शील सब से बढ़कर है।

( जातक १, ९ )

"जिस प्रकार विमल चन्द्रमा आकाश में जाते हुए सभी तारागण में प्रभा से अत्यन्त ही सुशोभित होता है, उसी प्रकार श्रद्धावान्, शीलसम्पन्न मनुष्य संसार के सभी मत्सरियों में अपने त्याग से अत्यन्त ही शोभता है।"

( अंगुत्तर निकाय ५, ४, १ )

---

# बौद्धधर्मसे ही मानव-कल्याण

श्रीबलाइचन्द्बोस एम० ए०

विश्व आज युग-सन्धिकाल से गुजर रहा है। मानव संचलित इस विश्वव्यापी युद्ध एवं इसकी प्रतिक्रियात्मक शक्तियों ने आज मानव समाज में भयंकर उथल-पुथल मचा रखा है। इतना ही नहीं, मानव ने आज मात्स्यन्याय का जामा पहन कर ताण्डव नृत्य करना आरम्भ किया है। अपने को सभ्य कहने वाले मानव ने प्राक्कालीन विश्रृङ्खलता को भी मातकर रखा है। अशांति ने आज जो भयंकर रूप धारण किया है, उससे विश्व शान्ति की भित्ति तक हिल गयी है और इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व भी रह सकेगा ऐसा विश्वास नहीं होता। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमारे चारों तरफ पाशविक प्रवृत्तियाँ दिनोंदिन बलवान होती जा रही हैं। क्षमता और शक्ति के दुर्व्यवहार के फलस्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भयानक अविश्वास, परस्पर विषम विद्वेष, घृणा आदि का अन्त, ध्वंसात्मक युद्ध, रक्तपात, हत्या, बलात्कार आदि के रूप में हो रहा है। यह स्पष्ट ही देखने में आता है कि मानव समाज अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता सत्य-अहिंसा तथा विश्व-बन्धुत्व के महान् आदर्श से कोसों दूर भागता जा रहा है। हम लोगों के व्यक्तिगत भौतिक सुख प्राप्त करने की भावना ने हमें अपने नैतिक एवं धार्मिक मार्ग से विचलित कर दिया है। युग-युगान्तर में भारत के इस प्राङ्गण में कभी अहिंसा और सत्य की वाणी ध्वनित हुयी थी, हम लोग सर्वथा भूल गये हैं। एक अनुत्तरदायी उछृङ्खता ने हम लोगों के धार्मिक संगठन की भित्ति तक ढाह दी है। जो आदर्श-नीति हम लोगों के सामाज में एकता और हमारे नैतिक जीवन की सृष्टि करने में समर्थ हुयी थी, उसके उन्मूलन के फलस्वरूप हम लोग दुर्दशा के असीम गर्त में गिर चुके हैं। जीवित रहने और दूसरों को जीवित रहने देने का आदर्श हम लोग भूल चुके हैं। फलस्वरूप हमारी सांस्कृतिक एवं भौतिक प्रगति ठप पड़ गयी है। महात्मा गाँधी ने कहा है कि "अर्थ की उपासना एवं वाक्य इन्द्रजाल ही आज की सभ्यता का प्रधान अंग है।" चित्त की वह शान्ति, वह शान्तिमय जीवन, आनन्द और विश्व-बन्धुत्व का आदर्श, जिनने विभिन्न धर्मावलम्बी समाज को भी एकता और नैतिकता के सूत्र में बाँध रखा था, आज वे लुप्त हो गये हैं। इस कठिन समस्या ने विश्व को यह सोचने को बाध्य किया कि किस तरह मानव के नैतिक जीवन चरित्र में आमूल परिवर्तन कर 'तथागत' प्रदर्शित मैत्री, करुणा और उपेक्षा के मार्ग का अवलम्बन कर, इस विश्व में चिर शान्ति स्थापित करने में समर्थ हो सकेंगे—भारत और प्राची ने विश्व को ढाई हजार वर्ष पहले ही वह मार्ग दिखलाया था।

इस भयंकर परिस्थिति में भगवान् बुद्ध के उपदेशों मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा द्वारा एकमात्र भारत ही विश्व को परित्राण के पथ पर ले चलने में समर्थ हो सकता है। अतएव, हमलोगों का प्रथम कर्त्तव्य होता है कि हम अपने दुःखों (राग-द्वेष, अविश्वास, लोभ इत्यादि) के मूल कारणों का पता लगावें। हम देखते हैं कि हमलोगों के चारों तरफ अवांछित ज्ञानहीन एवं अनुत्तरदायी जीवन का पूर्ण प्रसार है। अपने सत् कर्तव्य से हटकर हमलोग अपने जीवन में असह्य यातना सह रहे हैं। यही कारण है कि आज हमारा अस्तित्व भी खतरे में दिखायी पड़ता है। हमलोगों में मैत्री, मुदिता, करुणा, उपेक्षा—इन ब्रह्म विहारों का सर्वथा अभाव हो गया है और यही कारण है कि हम दिनोंदिन विनाश-पथ पर तीव्र गति से अग्रसर होते जा रहे हैं। यदि हम इन उच्च विचारों से युक्त मानवीय सत्ता की यथार्थ चर्चा करें तो अवश्यमेव मानव-समाज का वृथा नाश न कर हम 'प्रकृत प्रदत्त रत्न—

मानव,को एकता के सूत्र में पिरोकर विश्वशान्ति स्थापित करने में समर्थ होंगे।

किन्तु आज भारतीयों के रग-रग में साम्प्रदायिक विद्वेष व्याप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप हमारी कठिन तपस्या से अर्जित स्वाधीनता मूल्यहीन एवं प्रगति असम्भव हो गयी है। इस संकटमय परिस्थिति में एकमात्र बौद्ध धर्म ही मानव समाज की अज्ञानता दूर कर, नैतिक एवं सामाजिक भावना में आमूल परिवर्त्तन तथा प्रेम का प्रचार कर, उसे परित्राण कर सकता है। बौद्ध धर्म के अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुसरण करने पर हम अपने चरित्र को सुधार कर एवं अपने चरित्र का गठन कर, अपने को पतन के गर्त में गिरने से बचा सकते हैं। आदर्श-चरित्र और व्यवहार के लिये अन्य धर्मों में जो मार्ग बतलाये गये हैं, वे तो इस धर्म में भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसकी अपनी कुछ विशेषतायें हैं। इसका कार्य-कारण का सिद्धान्त समस्त संसार के प्राणियों के दुःख निवारण में अद्वितीय है। सर्व साधारण एवं सर्व वर्ग तथा सर्व जाति के लिये बौद्ध-धर्म एक बहुमूल्य धर्म है। स्व० बालगंगाधर तिलक के मतानुसार बौद्ध-धर्म कोई रूढ़िवादी धर्म नहीं, प्रत्युत 'बुद्ध शासन' चरित्रगठन तथा उच्च सभ्यता का एक स्वाभाविक निर्झर है। बुद्धकालीन भारत का वर्णन करते हुये, सत्य और अहिंसा के अनन्य भक्त महात्मा गांधी ने अपने 'यङ्ग इण्डिया' (१९२१) में लिखा था—

"भारत जिस काल में सब प्रकार से उन्नत हुआ था, वह बौद्ध-कालीन युग में ही। भारत का सर्वाधिक सीमा विस्तार उसी समय हुआ था। प्रेम के वशीभूत होकर ब्राह्मण एवं शूद्र एक साथ हिल-मिल कर रहते थे। ब्राह्मण की घृणा एवं शूद्र के द्वेष का नामोनिशान न था। भ्रातृ-प्रेम से प्लावित होकर दोनों दलों ने पृथ्वी की शेष सीमा पर्यन्त इस भ्रातृ-प्रेम का प्रचार किया था।"

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गत १९३४ ई० में लंका में कहा था "मेरे अन्तःकरण में दृढ़ धारणा बनी हुई है कि समस्त मानव एक हैं और यह वही विचार है जिसे भगवान् बुद्ध ने विश्व को दिया था।"

---

# भगवान् बुद्ध के सन्देश

श्री एन० एन० घोष, एम० ए०

भगवान् बुद्ध ने आज से शताब्दियों पूर्व मानव मात्र के दुःख को दूर करने के विचार से सारनाथ में धर्मचक्र का प्रवर्त्तन किया था। उनके उपदेशों का एकमात्र उद्देश्य था—विश्व में प्रेम का प्रचार कर शान्ति स्थापित करना। वर्तमान् समाज में जाति एवं वंश के मिथ्या अभिमान ने परस्पर घृणा की वृद्धि में पूर्ण सहायता की है। परस्पर घृणा, अविश्वास विचार-वैषम्य और अधिकार लिप्सा की भावना ने आज अपना विकराल रूप धारण किया है। आज मानव को मानव का शोषण करने में ही सुख की अनुभूति हो रही है। एक दूसरे को धोखा देकर क्षणिक सुख प्राप्त करने की भावना इतनी प्रबल हो गयी है कि मानव ने आज दानव का रूप धारण कर लिया है। वह एक दूसरे के रक्त का प्यासा हो रहा है। भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेशों में इन्हीं कष्टों को दूर करने के लिए सहज उपाय बतलाये थे। उनके अमर सन्देश किसी स्थान-विशेष के लिए नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व के कल्याण के लिये थे और आज भी उनका प्रयोग विश्व-शांति के लिये किया जा सकता है।

भगवान् बुद्ध के महान् अनुयायी सम्राट् अशोक ने अपने धर्मानुशासन को एक विशाल शिला-स्तम्भ पर खुदवा कर सारनाथ में गड़वा दिया था। उसके शीर्ष पर बनी हुई चार सिंहों की मूर्तियाँ संसार की चारों दिशाओं में धर्म-प्रचार के उद्देश्य की प्रतीक हैं। भारत सरकार ने इसे राज्य-चिह्न स्वीकार कर विश्व-बन्धुत्व, शान्ति एवं

विश्व-प्रेम की भावना का सुन्दर परिचय दिया है।

भगवान् बुद्ध के सन्देश जो आज तक अनगिनत व्यक्तियों को शान्ति प्रदान किये हैं एवं करते आ रहे हैं। वे और कुछ नहीं, केवल शान्ति, प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के ही सन्देश हैं, उनमें प्राणिमात्र के कल्याण और शान्ति का रस है, जिसे पीकर कोई भी प्राणी संसार के दुःखों से शान्ति प्राप्त कर सकता है। ये सन्देश चिरकाल तक, जब तक कि पृथ्वी का अस्तित्व रहेगा, अमर रहेंगे। इन सरल, शान्त एवं उदार सन्देशों में देखिये कैसी समता, सहृदयता, प्रेम, शान्ति, विश्व-मैत्री एवं प्राणिमात्र के कल्याण की बातें कही गई हैं। परम कारुणिक तथागत ने कहा है :—

'दण्ड से सभी डरते हैं, मृत्यु से सभी भय खाते हैं, अपने समान इन बातों को जानकर न किसी प्राणी को मारें न मारने की प्रेरणा करे।'

'सुख चाहने वाले प्राणियों को, अपने सुख की चाह से जो दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता। सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से जो दण्ड से नहीं मारता, वह मरकर सुख को प्राप्त होता है।'

भगवान् बुद्ध के इन कल्याणकारी सन्देशों में शील (सदाचार), आत्म-विश्वास, आत्म-त्राण, भावना एवं चित्त का एकीकरण (समाधि) का वह अद्भुत समन्वय है, जिससे व्यक्ति के उपर्युक्त सारे कष्ट दूर हो सकते हैं। यही कारण है कि ये सन्देश भारत ही नहीं, प्रत्युत विश्व के कोने-कोने में वायु-वेग के सदृश व्याप्त हो गये। आज भी बर्मा, लंका, चीन, जापान, साइबेरिया, तिब्बत, नेपाल आदि के अधिकांश मनुष्य या यों कहें कि संसार के एक तिहाई से भी अधिक मानव इन सन्देशों में आस्था रखते हैं। भारत यद्यपि कुछ दिनों इन सन्देशों के प्रबल प्रभाव से वंचित रहा है, फिर भी इनका अद्भुत प्रभाव अति वेग से अब व्याप्त होता दीख रहा है। हमारे नेता (डा० अम्बेडकर, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि) या राष्ट्र के कर्णधार इनमें पूरी आस्था करने लगे हैं। लंका में हुये बौद्ध मातृ मण्डल के अधिवेशन से अब यह बात स्पष्ट है कि इन सन्देशों के पुनः प्रसार का समय आ गया है और शीघ्र ही बड़े वेग से इनका सारे संसार में प्रसार होगा एवं मानवमात्र इसे अपने तथा जागतिक कल्याण का साधन समझने लगेगा। वस्तुतः हमारा परम कल्याण इसी में निहित है कि हम भगवान् बुद्ध द्वारा दिये गये इन सन्देशों को—जो त्रिकाल सत्य हैं—सहर्ष तथा शीघ्र अपना लें।

---

# भिक्षु उत्तम

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

जब भी मैं कभी बर्मा का कोई समाचार सुनता हूँ तो मुझे उनकी याद आ जाती है, जिन्हें हम सब भूल गये प्रतीत होते हैं।

सन् १९२७ की मद्रास-कांग्रेस में ही शायद मैंने उन्हें सबसे पहले देखा था। मैं सिंहल के रास्ते पर जैसे-तैसे मद्रास पहुँचा था। राहुलजी ने मथुरा बाबू (राजेन्द्र बाबू के निजी मन्त्री) को लिख दिया था कि वह मुझे मद्रास पहुँचने पर सिंहल तक का किराया दे दें या शायद किसी से मिला दें। मेरा हाथ खाली था और मैं इस चिन्ता में था कि जब लोग अपनी-अपनी बोलियाँ बोलकर उड़ जायेंगे अर्थात् मद्रास-कांग्रेस समाप्त हो जायेगी तो मैं कहाँ जाऊँगा? क्योंकि मैं कुछ बौद्ध भावना को लिये हुये सिंहल की ओर जा रहा था, इसलिये मुझे सूझा कि उस समय की कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी या शायद केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य भिक्षु उत्तम से मिल लूँ। उनसे जब भेंट-मुलाकात हुई और उन्हें मेरी प्रवृत्ति मालूम हुई तो उन्होंने कहा कि चलो, मेरे साथ बर्मा चलो। मैं रास्ते का सब खर्च आदि की व्यवस्था कर दूँगा।

किन्तु मैं तो सिंहल आने के लिये दृढ़ निश्चयी था।

नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—नहीं भन्ते, मैं तो एक बार रामेश्वर पहुँचकर भारतमाता के चरणों में प्रणाम करके ही आना चाहता हूँ।

उस समय तक उर्दू समाचार-पत्रों की कृपा से मैं उन्हें भिक्षु ओटामा ही समझता था। और न जाने कैसे भिक्षु ओटामा और ओटावा-कान्फ्रेंस में कुछ बहुत भेद भी न कर पाता था?

दो-तीन वर्ष सिंहल रहकर भारतीय सत्याग्रह संग्राम में हिस्सा लेने की इच्छा से जब मैं १९३० में बम्बई भाग आया, तो उस समय वे बम्बई के प्रसिद्ध बुद्ध-भक्त स्वर्गीय डा० नायर के यहाँ ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिला। बहुत देर तक बातें की। बड़ी जली-कटी सुनने को मिली। उस दिन पहले पहल मैं इस बात को समझ सका कि प्रकाश की आवश्यकता हो तो आग से नहीं घबराना चाहिये। भिक्षु उत्तम सचमुच कुछ इतने खरे थे, इतने आग थे कि सहज में उनके पास कोई ठहर ही न सकता था, किन्तु ऐसी आग कि समये आने पर वह दूसरों को पिघलाने का कारण बनने की बजाय स्वयं ही पिघल जायें।

बीच-बीच में भेंट हुई तो, किन्तु कानपुर-हिन्दू महासभा की समाप्ति के बाद तो उन्होंने मुझे अपना अनुचर ही बना लिया; बोले—चलो साथ चलें। मेरी अपेक्षा कहीं ज्येष्ठ होने से उनका मुझ पर वही अधिकार था जो बड़े भाई का छोटे भाई पर; वह किसी से मेरा जिकर भी करते थे तो भाई आनन्द जी ही कहते थे। कानपुर-अधिवेशन की ही, उनकी कम से कम तीन बातें हृदय पर अंकित हैं—

(क) अधिवेशन हो रहा था। कार्यसमिति में अथवा हिन्दू सभा में बुद्ध-गया का प्रश्न उपस्थित था। बौद्ध होने से उनकी स्वाभाविक सहानुभूति ही नहीं, उनका हृदय बौद्ध-माँग के साथ था, किन्तु हिन्दू महासभा के अध्यक्ष की हैसियत से वे तटस्थ रहने के लिये मजबूर थे। बड़ी विषम परिस्थिति थी। तब उन्होंने एक कथा सुनाई। बोले—एक शेर था। वह प्रायः जानवरों को अपना मुँह सुँघाता और उनसे पूछता कि उसके मुँह से सुगन्ध आ रही या दुर्गन्ध? कोई डर के मारे कह देता कि आपके मुँह से सुगन्ध आ रही है। शेर उसे डाँटता। मैं दिन भर जानवरों को मार-मार कर खाता रहता हूँ; मेरे मुँह से सुगन्ध कैसे आ सकती है? और वह उसे खा जाता। कोई जानवर साफ-साफ कह देता कि मुँह से दुर्गन्ध आ रही है, तब शेर गर्ज उठता—मैं जंगल का राजा; मेरे मुँह से दुर्गन्ध आ सकती है? वह उसे भी खा जाता। एक गीदड़ ने सोचा क्या किया जाय, दोनों तरह जान जाती है। शेर ने उससे भी पूछा—मेरे मुँह से सुगन्ध आ रही है अथवा दुर्गन्ध? गीदड़ बोला—हुजूर मुझे तो जुकाम हो रहा है। पता ही नहीं लगता कि आपके मुँह से सुगन्ध है अथवा दुर्गन्ध? सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। भाई परमानन्द, जो हिन्दू सभा के कार्याध्यक्ष थे, वे तो एकदम लोटपोट हो गये। सभी भिक्षु उत्तम की इस चतुराई पर प्रसन्न थे कि उन्होंने अध्यक्ष की तटस्थता की रक्षा करते हुये अपना मत भी व्यक्त कर ही दिया।

मैं उनके साथ सारा उत्तर भारत घूमा। वे भाषाओं में व्याकरण शुद्ध भाषा न बोलते थे, किन्तु ऐसा एक भी अवसर याद नहीं जब उनके प्रत्युत्पन्नमतित्व ने उनका साथ छोड़ा हो।

(ख) अधिवेशन समाप्त हुये तो कानपुर के ही किसी एक बड़े औषधालय के मालिक उन्हें अपने यहाँ बुलाकर उनका स्वागत सत्कार करना चाहते थे। मैंने देखा कि वह बराबर बच रहे हैं। एक बार बोले—हमें अपने यहाँ बुलाकर अपनी दवाइयों का ही विज्ञापन करेगा। अधिक आग्रह करने पर चले गये और वहाँ उनकी सम्मति पुस्तक में बड़ी ही अन्यमनस्कता के साथ मुझे दो शब्द लिख देने का आदेश भी दे दिया।

(ग) बात तो छोटी सी ही है किन्तु भिक्षु उत्तम की विशेषता पर प्रकाश डालती है। उन्हें गांधी जी की ही तरह अपने संगी-साथियों का बड़ा ख्याल रहता था। उत्सव की समाप्ति पर जब उन्होंने अपने सभी साथियों के लिये सवारी की उचित व्यवस्था के बारे में अपना संतोषकर लिया तब ही वे मोटर में सवार हुये।

वे हिन्दू महा सभा के अध्यक्ष थे, किन्तु ऐसे अध्यक्ष

जो हिन्दू महासभा के कांग्रेस-विरोध के पक्के विरोधी। भिक्षु उत्तम अध्यक्ष और भाई परमानन्द उपाध्यक्ष। अजब बेमेल जोड़ी थी। श्रीयुत युगल किशोर बिड़ला के विशेष प्रयत्न से ही वे हिन्दू महासभा के अध्यक्ष बने थे। किन्तु थोड़े ही दिनों में लोगों को पता लग गया कि यह टेढ़ी-मेढ़ी हिन्दी बोलने वाला बौद्ध साधु प्रायः हर बारे में अपनी स्पष्ट राय रखता है, और उसके धर्म को अथवा उसकी राजनीति को पचा जाना आसान नहीं।

दिल्ली में प्रसिद्ध आर्य समाजी नेता ला० नारायण-दत्त जी के यहाँ उतरे थे। एक दिन लाला जी ने कहा—देखिये भिक्षुजी इस चित्र में राम, कृष्ण और अन्य अवतारों के साथ बुद्ध का भी चित्र है। सोचा होगा भिक्षुजी बड़े प्रसन्न होंगे? बोले क्या खाक है! एक योगी को कामभोगियों के साथ ले जा बिठाया है। ऐसी तीखी बात कह सकने वाले अपने सभपति को कोई क्या कहे? हिन्दू बौद्ध एकता का प्रदर्शन करने के लिये जिसे अभी चार ही दिन हुये सभापति बनाया, उससे लड़ा भी नहीं जा सकता था!

भिक्षु उत्तम चाहते थे कि हिन्दू-महासभा राजनीति में न पड़कर केवल समाज- सुधार का कार्य करे। राजनीति में वह कांग्रेस के साथ थे जो हिन्दू-महासभा को करना चाहिए था, वह या तो करती ही न थी, या उससे होता ही न था। इसलिए भिक्षु उत्तम उसे कभी-कभी बड़े आड़े हाथों लेते थे। रावलपिंडी की एक सभा में लोगों ने, जिनकी राजनीति केवल चुनाव लड़ने और मुसलमानों को गालियाँ देने अथवा उनकी शिकायतें करने में ही समाप्त हो जाती थी, भिक्षु उत्तम को चारों ओर से घेरा। जब भिक्षु उत्तम से न रहा गया तब उपस्थित लोगों को डांटकर बोले—राजनीति—राजनीति करता है। छोड़ेगा सरकारी रेल-तार, छोड़ेगा सरकारी डाकखाना। करेगा अंग्रेजी स्कूलों और कचहरियों का बायकाट। होता-जाता कुछ नहीं। राजनीति, राजनीति करता है! उनकी वह डांट मुझे अभी भी ज्यों की त्यों सुनाई दे रही है। उसने रावलपिंडी के उन-हिन्दू महा सभाई नेताओं को एक बारगी ही ठंडा कर दिया।

अब हिन्दू महासभा जिस बात को अपनाने की बात कर रही है, काश! उसने अपने आरम्भ से ही उसे अपनायी होती। किन्तु सामाजिक क्रान्ति का कार्यक्रम किसी को भी अपील नहीं करता। कांग्रेस ने ही उसे अपने हाथ में लिया और न हिन्दू-महासभा ने ही।

लोगों को देखा है कि वे प्रायः दूसरों पर नीति-शास्त्र के नियमों की बड़ी कड़ाई से लादते हैं। किन्तु भिक्षु उत्तम अपने ही प्रति विशेष रूप से कड़े थे। दूसरा आदमी चाहे प्रायः कैसा भी हो, उसे निभा लेते। एक बार न जाने पंजाब में ही कहां से कहां को यात्रा की जा रही थी। रात के समय ड्योढ़े दर्जे में चढ़े। डिब्बे में जगह काफी थी। लोगों ने कहा कि आप का बिस्तर खोलकर बिछा दें। लेट जाइयेगा। बोले नहीं हमने लेटने का टिकट नहीं लिया है। वह सारी रात अपने बिस्तरे के सहारे बैठे रहे। एक मिनट भी बिस्तर बिछाकर लेटे नहीं।

वे नित्य कुछ पालि सूत्रों का पाठ किया करते थे। दिन में अगर व्याख्यानों का तांता लगा रहे तो कोई परवाह नहीं। शाम को यदि पाठ करने के लिए समय नहीं मिला है तो कोई चिन्ता नहीं। रात को बारह बजे के बाद तो रात अपनी है। मैंने उन्हें रात के एक और दो बजे पाठ करते देखा है; बिना पाठ किये सोते कभी नहीं देखा।

अपने प्रति तो इतने कड़े किन्तु दूसरों के प्रति? एक पंजाबी तरुण हमारे साथ चल रहे थे। दो चार स्टेशन साथ रहने पर भी मुझे सन्देह हुआ कि वह खाने-पीने की चीजें खरीदने जाते हैं तो बीच में कुछ पैसे बना लेते हैं। मैंने महास्थविर का ध्यान आकर्षित किया। बोले आखिर इतनी गर्मी में अपने पीछे-पीछे दौड़ता है। कोई वेतन तो पाता नहीं। कुछ न कुछ बनायेगा ही। बहुत नहीं बनाता। चुप रहो।

प्रायः हर देशाटन करने वाले को दो-चार भाषाओं से परिचय हो ही जाता है। भिक्षु उत्तम अपनी मातृ-भाषा बर्मी के अतिरिक्त, जापानी, बँगला, हिन्दी, अँग्रेजी

और दो-एक और भाषाएँ बोल लेते थे; किन्तु सभी टूटी-फूटी। अपने वाक्यों में दो एक अंग्रेजी वाक्यों के प्रयोग वे किया करते थे, जो व्याकरण की दृष्टि से प्रायः अशुद्ध होते और जिन्हें उनके समय के अंग्रेजी से अपरिचित अथवा अल्प परिचित व्याख्याताओं की विशेषता थी। हिन्दी-हिन्दुस्तानी में वे निधड़क बोलते थे, मानों कोई सड़क कूटने वाला इंजन सड़क कूटता चला जा रहा हो!

भाषण में हँसाते भी खूब थे और कभी कभी तो विरोधी का ऐसा मजाक बनाते मानों कोई चार्ली चेपलन ही रंगमंच पर उतर आया हो!

उन्हें अपनी माता से बहुत सा रुपया मिला था। उनकी इच्छा थी कि वह सारा रुपया नागरी अक्षरों में पालि त्रिपिटक के मुद्रण पर खर्च हो जाय। कितने बड़े खेद की बात है कि भारत को अपने बुद्ध पर इतना गर्व है, और उचित गर्व है; किन्तु बुद्ध के जो मूल उपदेश पालि भाषा में सुरक्षित हैं, उन्हें यदि आप आज भी पढ़ना चाहें तो वे आपको देवनागरी अक्षरों में पढ़ने को न मिलेंगे? आप उन्हें रोमन अक्षरों में पढ़ सकते हैं, सिंहल अक्षरों में पढ़ सकते हैं, बर्मी अक्षरों में पढ़ सकते हैं, स्यामी अक्षरों में पढ़ सकते हैं, किन्तु बुद्ध की अपनी भूमि के आज देवनागरी अक्षरों में नहीं पढ़ सकते। भिक्षु उत्तम की प्रेरणा से राहुलजी ने नागरी अक्षरों में त्रिपिटक मुद्रण के कार्य को अपने हाथ में लिया। भिक्षु जगदीश काश्यप और इन पंक्तियों के लेखक ने भी उसमें सहयोग देना स्वीकार किया। खुद्दक पाठ के ११ ग्रंथ छपे भी, किन्तु राहुल जी के बहुधन्धीपन के कारण और हम लोगों के उस कार्य को अपने सिर न ओढ़ सकने के कारण वह गाड़ी आगे न चल सकी। भिक्षु उत्तम की वह पुण्यमयी इच्छा मन ही मन रही।

उन्होंने बर्मा के सार्वजनिक जीवन को प्रायः हर तरह से उभारने का प्रयत्न किया था। जनता के प्रिय-भाजन होने के हिसाब से तो वे बर्मा के गांधी थे। चलते थे तो स्त्रियाँ अपने सिर से बाल उनके पैरों के नीचे बिखेर देती थीं; बड़े ही आदरणीय, बड़े ही स्पष्ट वक्ता।

किन्तु, हायरी छलना राजनीति! उनके अन्तिम दिन बड़े दुःखमय बीते। बर्मा के दो राजनैतिक दलों में से एक का साथ उन्होंने जन्म भर दिया। अन्तिम दिनों में उसे छोड़कर दूसरे दल में शामिल हो गये। जिसे छोड़ दिया था वह दल जीत गया, जिसमें शामिल हुए वह दल हार गया। भिक्षु उत्तम कहीं के न रहे।

उनके अन्तिम दिन विक्षिप्त शब्द के यथार्थ अर्थ में एक विक्षिप्त का जीवन था। अपनी चप्पल अपनी बगल में लिए लोगों ने उन्हें बर्मा की सड़कों पर फटेहाल घूमते देखा है?

किन्तु, उनका जब शरीरान्त हुआ बर्मी जाति ने उनके प्रति वही गौरव प्रदर्शित किया, जिसके वे अधिकारी थे। बर्मा के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के साथ उनकी याद अमिट है।

---

# महान् पुरुषों के ध्यान से मानसिक लाभ

प्रो० लालजीराम शुक्ल

अमेरिका के प्रसिद्ध लेखक डेल कारनेगी महाशय अपनी 'पबलिक स्पीकिंग' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि जब सभा में बोलने में घबराहट का अनुभव हो तो किसी महान् पुरुष का ध्यान करो तो तुम अपने आप में वह शक्ति आते हुये देखोगे जिससे अपने श्रोताओं को वश में कर लोगे। जब कभी प्रेसिडेन्ट रुजवेल्ट को राज्य के काम में कोई बड़ी कठिनाई का अनुभव होता था, जब उन्हें किसी ऐसे निर्णय को करना पड़ता था जिसमें अनेक प्रकार की जटिल बातों पर विचार करने की आवश्यकता होती थी तो वह अब्राहम लिंकन का ध्यान करता था। वह सोचता था कि यदि मेरी स्थिति में अब्राहम लिंकन होता तो क्या करता? फिर जो कुछ

इस प्रकार निर्णय होता वह उसी के अनुसार कार्य करने लगता था। किसी भी महान् पुरुष की अच्छी तस्वीर अपने कमरे में रखने का यही लाभ है कि हम उनके साथ मानसिक एकता स्थापित कर सकें; किसी भी संकट के समय जैसा उन्होंने किया वैसा हम भी अपने संकट काल में करें।

महान् पुरुषों का ध्यान मनुष्य की इच्छा शक्ति को बली बना देता है। जो कुछ मनुष्य सोचता है वह तत्क्षण वही हो जाता है। जब हम किसी उद्विग्न मन के व्यक्तिके विषय में चिन्तन करते हैं, उससे लड़ते झगते हुये अपने आपको देखते हैं तो हम उसे उद्विग्न मन के व्यक्ति के अनुरूप ही हो जाते हैं। जब हम किसी भले शान्त स्वभाव के व्यक्ति का ध्यान करते हैं, उससे बातचीत करने की कल्पना अपने मन में लाते हैं तो हम उसी प्रकार के अपने आप ही हो जाते हैं।

भगवान् बुद्ध के ध्यान मात्र से मन शान्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। लेखक के एक अँग्रेज मित्र श्री रोनाल्ड निकसन ने भगवान् बुद्ध की प्रतिमा के ऊपर ध्यान जमाने के लाभ के विषय में लेखक को एक बार अद्भुत बातें कहीं। इस प्रकार के ध्यान से वे गृहस्थ जीवन छोड़कर साधु बन गये। श्री निकसन महाशय ने पहले जर्मन युद्ध में भाग लिया था। वे वायुयान के संचालकों के आफिसर थे। उनके बासठ साथियों में से लड़ाई समाप्त होने पर केवल पाँच बच गये थे। उनके मन में इस युद्ध के समाप्त होने पर भारी अशान्ति हुयी। वे किसी तथ्य को खोजना चाहते थे। एक बार जब वे अपने गम्भीर चिन्तन में लगे थे और संसार से निराश हो चुके थे तब उनका ध्यान केंब्रिज विश्वविद्यालय के एक बड़े कमरे में रक्खी बुद्ध भगवान् की मूर्ति पर गया। वे बहुत देर तक भगवान् बुद्ध की ध्यान मुद्रा में अपने आप ही डूब गये। भगवान् बुद्ध के शान्त भाव ने उन्हें इतनी शान्ति दी कि उन्हें निश्चय हो गया कि यदि उस शान्त भाव को वे सभी समय के लिये प्राप्त कर लें तो अवश्य ही उनकी मानसिक व्यथा का सब काल के लिये अन्त हो जाय। उसी शान्ति की खोज के लिये श्री निकसन ने बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया। वे भारतवर्ष आये और फिर साधु बन गये। आज भी वे त्याग के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

जापान में बौद्ध धर्म का एक विशेष प्रकार का विकास हुआ है। वहाँ का एक सम्प्रदाय मुक्ति और शांति लाभ के लिये पढ़ना लिखना और तार्किक विचार करना व्यर्थ समझता है। वह ध्यान को ही प्रधानता देता है। इस सम्प्रदाय को "जेन बौद्ध" सम्प्रदाय कहते हैं। इस सम्प्रदाय के लोग बड़े कर्मठ और ज्ञानी होते हैं। उनकी शान्ति-मुद्रा से संसार के बड़े-बड़े विद्वान् और दार्शनिक प्रभावित होते हैं। मनुष्य की शान्त मुद्रा में दूसरों को प्रभावित करने का जो बल है वह दूसरी किसी बात में नहीं है। शान्त भाव के व्यक्ति के विषय में चिन्तन मात्र करने से मनुष्य में नई शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उसका खोया आत्म-विश्वास चला आता है। उसके हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है और उसे नया प्रकाश मिल जाता है।

इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध कवि कीट्स महाशय एक सुन्दर मूर्ति को देखकर इतने मुग्ध हो गये कि उन्होंने सौन्दर्य को मूर्तिमान सत्य कह दिया। सुन्दर पदार्थों को देखकर हृदय का सौन्दर्य आता है। परन्तु सुन्दर भावों वाले व्यक्ति की कल्पना मनुष्य के व्यक्तित्व को ही उसके बिना जाने ही बदल देती है। सुन्दर भावों का व्यक्ति चाहे कुछ बोले अथवा न बोले उसकी उपस्थिति मात्र का प्रभाव सभी लोगों के मन पर पड़ता है। मनुष्य जो कुछ करता अथवा कहता है उससे कहीं अधिक प्रभावकारी उसका व्यक्तित्व है। अर्थात् भाषण की अपेक्षा मौन भाषण मनुष्य के हृदय को अधिक प्रभावित करता है। महान् पुरुष संसार की सेवा उनकी उपस्थिति मात्र से करते हैं। दृढ़व्रती मनुष्य की कल्पना मात्र से हम दृढ़व्रती बन जाते हैं, त्यागी की कल्पना से त्यागी और उदार की कल्पना से उदार बन जाते हैं। जो व्यक्ति जैसा अपने आप को बनाना चाहता है, वह यदि अपने आदर्श के अनुरूप किसी महान् पुरुष का प्रति दिन ध्यान करे तो वह धीरे धीरे अपने आपको तदानुरूप परिणित होते हुए पायेगा।

मनुष्य महान् पुरुष के ध्यान से अपनी आत्म-निर्देश की शक्ति को बढ़ा लेता है। मान लीजिये आपके पेट में

दर्द हो रहा है। आप मानते हैं कि अमुक व्यक्ति आपके पेट के दर्द का हरण कर सकता है। आप उसका ध्यान कीजिये और सोचिये कि वह आपके ऊपर हाथ फेर कर उस पीड़ा को हटा रहा है। आप देखेंगे कि कुछ काल के बाद आपकी पीड़ा जाती रही। इमील कूये महाशय अपने रोगियों को यही आदेश देते थे, कि वे प्रति दिन इस विचार का नियमित रूप से अभ्यास करें कि हम हर प्रकार हर दिन अच्छे हो रहे हैं। वे यह भी कह देते थे कि इन शब्दों को कहते समय रोगी सोचे कि इमील कूये उनके पास खड़े हैं। इस प्रकार के चिन्तन से रोगी को स्वास्थ्य लाभ करने में अपार लाभ होता था।

जब मनुष्य अपने पुरुषार्थ में विश्वास खो देता है तो किसी महान् पुरुष का ध्यान फिर से उसमें विश्वास उत्पन्न कर देता है। अंग्रेजी में कहावत है, 'जिस प्रकार रोग संक्रामक है उसी प्रकार स्वास्थ्य भी संक्रामक है। रोगी मनुष्य के सम्पर्क में आने से साधारण व्यक्ति भी अपने आप में रोग की कल्पना करने लगता है और स्वस्थ मनुष्य के सम्पर्क में आने से साधारण मनुष्य अपने आप में शक्ति के उदय की अनुभूति करने लगता है। वह स्वास्थ्य वृद्धि के साधनों को अपनाने लगता है। यह सम्पर्क दो प्रकार का होता है। एक भौतिक और दूसरा मानसिक अधिक प्रभावकारी सम्पर्क मानसिक सम्पर्क है। कोई मनुष्य महात्मा के समीप भौतिकदृष्टि से रहकर भी उससे मानसिक दृष्टि से कोसों दूर रह सकता है और कोई उससे भौतिकदृष्टि से कोसों दूर रहकर भी मानसिक दृष्टि से अत्यन्त समीप रह सकता है। सच्चा सम्पर्क हृदय की चाह है। जिस व्यक्ति को जिसकी चाह है वह उसी के पास है।

नलनी जल बिच बसे, चंपा बसे अकास,
जाको जासो नेह है, सो ताही के पास।

जो लोग संसारी पुरुषों का सदा चिन्तन करते रहते हैं; उनकी सम्पत्ति और चरित्र के बारे में सोचा करते हैं वे उन्हीं के पास हैं चाहे वे जंगल में ही क्यों न बैठे हों और जो व्यक्ति त्यागी महापुरुष का नित्य प्रति ध्यान करते रहते हैं वे संसार के अनेक कार्य करते हुये भी उन महान् पुरुषों के समीप ही हैं। किसी भी महान् पुरुष का आदर उसके भौतिक शरीर की सेवा करने उससे प्रणाम् करने में नहीं है उसके विचारों पर उसके शान्त-भाव के बारे में बार-बार चिन्तन करने में है। लौकिक व्यक्तियों से सबसे अधिक लाभ उनके शरीर के समीप रहने से होता है। महान् पुरुषों से सबसे अधिक लाभ उनके शरीर से दूर रहने से ही होता है। महान् पुरुष सत्य के प्रतीक हैं। सत्य व्यापक तत्व है। महान् पुरुष की कल्पना हमें सत्य दर्शन का साधन बन जाती है। कल्पना की प्रबलता से मन और बुद्धि के परे का तत्व प्रत्यक्ष हो जाता है। जो लाभ सत्य के विषय में वर्षों चिन्तन करने से, उस पर तर्क-वितर्क करने से नहीं होता वह क्षण भर के सच्चे ध्यान से हो जाता है। संसार के महान् पुरुष मूर्तिमान सत्य हैं। उनका ध्यान करना उनके साथ आत्मसात करना है। इस प्रकार की मानसिक सम्पत्ति से मनुष्य वही मानसिक बल, शौर्य और प्रसाद अपने आप में आते हुए पायेगा जो उसके व्यक्तित्व में वर्तमान है। भौतिक दृष्टि से महान् पुरुष उसी प्रकार नश्वर है जिस प्रकार अन्य पुरुष हैं। पर विचार की दृष्टि से वे अमर हैं। जो व्यक्ति हर परिस्थितियों में अपने धैर्य को बनाये रखता है जो हर प्रकार के कष्ट में प्रसन्न-वदन रहता है वह महान् शक्ति का केन्द्र है। ऐसे व्यक्ति का ध्यानमात्र शक्ति और प्रसन्नता का उत्पादक होता है। भगवान् बुद्ध के ध्यान से कितने ही साधकों को समाधि लाभ होती है।

महान् पुरुष का ध्यान नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा और नये भले संकल्पों का कारण होता है। इसका एक कारण यह है इन महान् पुरुषों के सभी मन्तव्य अभी तक पूरे नहीं हुये। वे इनके बाद आने वाले लोगों के द्वारा पूरे हो रहे हैं। इमरसन महाशय के इस कथन में मौलिक सत्य है कि "महान् पुरुष एक ध्येय, एक राष्ट्र, एक युग है, वह अपने मन्तव्य की पूर्ति के लिए अनन्त व्यक्तियों और समय की अपेक्षा रखता है" यदि हम ऐसे महात्मा से अपना सम्पर्क जोड़कर उसकी शुभाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन बन जायें तो हम अपने आपको ही ऊँचा उठा लेंगे। महान् पुरुष अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व को दबाते नहीं; वे अपने

शिष्यों को अपने जैसा ही बना लेते हैं। जब जलती हुई एक मशाल का दूसरी मशाल से सम्पर्क होता है तो वह भी जल जाती है। फिर जो निर्जीव थी वह जीवित जाग्रत मशाल बन जाती है। जब तक मनुष्य किसी महान् पुरुष से अपना मानसिक सम्पर्क स्थापित नहीं कर लेता वह मनुष्य ही नहीं बनता। जिस प्रकार हम शरीर से अपने भौतिक माता-पिता के पुत्र हैं, मन से हम उन लोगों के पुत्र हैं जिन्हें हम ज्ञानी मानते हैं। शारीरिक जन्म एक ही बार होता है। पर मानसिक जन्म बार-बार होता रहता है। संसार के सभी महान् पुरुष प्रत्येक व्यक्ति को महान् बनने की प्रेरणा देते हैं। कभी यह प्रेरणा एक व्यक्ति से मिलती है, कभी दूसरे से। किसी न किसी महान् पुरुष का निकटतम मानसिक सम्पर्क बनाये रखना हमारे लिए आत्मोत्थान का सर्वोत्तम उपाय है।

---

# बुद्ध का कर्मवाद

भिक्षु धर्मरक्षित

संसार में अनेक पारस्परिक खिलाफ बातें दीखती हैं—एक हीन है तो दूसरा उत्तम। एक अल्पायु है तो दूसरा दीर्घायु। एक रोग बाहुल्य का शिकार बना हुआ है तो दूसरा एकदम निरोग। एक बदसूरत है तो दूसरा बहुत ही खूबसूरत। एक निर्बल है तो दूसरा सबल। एक दरिद्र है तो दूसरा महाधनी। एक नीच कुल में उत्पन्न हुआ है तो दूसरा उच्चकुलमें। एक निर्बुद्धि है तो दूसरा बुद्धिमान। इन विभिन्नताओं के क्या मूल हेतु हैं? कौन से ऐसे कारण हैं कि सभी एक योनि में उत्पन्न होकर भी मुख्तलिफ बातों में बिल्कुल् जुदा है?

भगवान् बुद्ध के पूर्व और समसामयिक दर्शनिकों में यह प्रश्न एक ऐसी जटिल समस्या का विषय रहा कि एतद् विषयक मतैक्य कभी भी नहीं हो सका। एक दार्शनिक कहता है—'जहाँ तक व्यक्ति की हीनता प्रणीतता, सुख दुःख आदि बातें दीखती हैं, उन सब के कारण हैं व्यक्ति के पूर्व-कर्म। जब वह पुरबले कर्मों को तपस्या द्वारा समाप्त कर डालेगा और नये कर्मों को नहीं करेगा तो भविष्य में विपाक रहित होगा, विपाक रहित होने से उसके सारे दुःख खत्म हो जायेंगे।'

यदि सारे सुख-दुःख पुरबले कर्मों के ही विपाक हैं तो क्या व्यक्ति जानता है कि हम पहले थे अथवा नहीं? हमने पूर्व जन्म में पाप कर्म किया है अथवा नहीं? इस समय इतना दुःख खत्म हो गया और इतना बाकी है जो इतने समय में खत्म हो जायेगा? इसी जन्म में सारी बुराइयों का अन्त हो जायेगा और कुशलधर्म का लाभ? यदि 'नहीं' तो पुरबले कर्मों के हेतु ही सबको स्वीकार करना न्याय संगत नहीं।*

दूसरा दार्शनिक कहता है—'सबको बनाने वाला जगत–नियन्ता एक ईश्वर है, जो सब जगह और सबमें रहता है, यदि यह सत्य है तो वह बड़ा ही अन्यायी, दुःखद, व्यभिचारी, कुटिल और सब तरह की बुराइयों की जड़ है, क्योंकि तत्प्रवर्तित दुःख आदि कष्टदायक अनुभूतियों का ही पलड़ा भारी है। नृशंसता, शोषणता आदि से जगति-तल व्याकुल है। अगर सारी अनुभूति उसकी है तो दरअसल वह बड़ा मूर्ख है क्योंकि संसार की दुःखादि पीड़ाओं के लिये सभी सत्व अनिच्छुक हैं।

यह ईश्वर वस्तुतः एक महान् गुलामी की शिक्षा है जो कभी भी विचार विमर्ष को स्थान नहीं देता और अपने को एक दूसरी शक्ति का पक्का गुलाम समझता है।†

तीसरा दार्शनिक कहता है—'दान, यज्ञ, हवन करना व्यर्थ है, अच्छे-बुरे कर्मों का फल-विपाक नहीं है, न

---

* मिलाओ मज्झिम निकाय १, २, ४।

† मिलाओ दीघ निकाय १, १ और जातक १८, ३।

तो यह लोक है और न परलोक। माता-पिता का अस्तित्व स्वीकार करना अपने को दूसरों के हाथ बाजाप्ता बेंच देना है। संसार में अयोनिज सत्व अथवा देवता आदि नहीं हैं। हमें किसी श्रमण-ब्राह्मण की सत्यारूढ़ता में विश्वास नहीं। यह चार महाभूतों (= पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) से बने शरीर वाला व्यक्ति जब मरता है तब पृथ्वी पृथ्वी में मिल जाती है। जल जल में मिल जाता है। अग्नि अग्नि में लय हो जाता है। वायु वायु में चला जाता है। इन्द्रियाँ आसमान में उड़ जाती हैं। मरने के बाद कौन आता है और कौन जाता है?'

दान, यज्ञ, हवन आदि कर्मों के विपाकों को देखते हुये यह कैसे स्वीकार किया जाय कि सब व्यर्थ है? दान की बात तो छोड़ो, एक न्यायधीश को कुछ भेंट चढ़ाकर न्याय के ऊपर अन्याय की विजय करा लेते हैं। दुश्मन को धन, सम्पत्ति, राज्य आदि अपनी चीजें देकर सन्धि कर सुखपूर्वक विचरने लगते हैं। भूखों मरते व्यक्ति के प्राण को भी भोजन दान से बचा लेते हैं। इस धरती पर के सभी प्रदेश, नदी, नाले, गिरि, सागर को देखते हुए कैसे इस लोक को न मानें? धरती से दूर चन्द्रमा, सूर्य आदि को अपनी आँखों देखते हुये कैसे परलोक के अस्तित्व से मुकर जायँ? नित्य प्राणियों की च्युति और उत्पत्ति इहलोक तथा परलोक को मानने के लिये बाध्य करती है।

एक भले आदमी की प्रशंसा होती है। कीर्ति फैलती है। अच्छे कर्मों के फलस्वरूप उसे इस धरती पर राजा-राजमन्त्री वगैरह होते हुये देखते हैं और ठीक इसके विपरीत अपने बुरे कर्मों के कारण फाँसी की सजा पाते, कैदखाने का चक्कर काटते और शूट कर दिये जाते। फिर कैसे अच्छे बुरे कर्मों के फल को न माना जाय? माता-पिता का अस्तित्व स्वीकार न करना अपने को पशु से भी नीच बना देना है। बिना योनि से उत्पन्न लाखों भूत-प्रेत देखे जाते हैं। यदि सूर्य्य चन्द्रमा आदि को देव न मानें तो भी काली, हवहिया, बाइसी, दुर्गा, शीतला, भैरव आदि—देवी देवताओं के कृत्य देखते हुए कैसे हम इनका निषेध करें?

'शरीर केवल चार महाभूतों से निर्मित है, जब तक शरीर है तब तक ही जीवन है, उसके आगे फिर कुछ नहीं, जो हममें चेतना जान पड़ती है, वह सिर्फ विभिन्न परिणाम में मिश्रित रसों के कारण सम्भूत है, ऐसे ही उष्णता भी। उनके न्यूनाधिक होने मात्र से व्यक्ति काल कर जाता है।'

यदि इसे मान लिया जाय, तो न हमें अपने जीवन से कोई ताल्लुक रह जाता है और न उद्योग करने की आवश्यकता रहती है। जैसे कुक्कुर-बिलार खाते-पीते, जीते और मर जाते हैं, वैसे हमारी हस्ती भी निकम्मी बन जाती है। किसी को भी किसी ऊँचे आदर्श के लिए प्रोत्साहन देना फिजूल हो जाता है। लोक, समाज, देश और व्यक्तिगत हित-साधक कर्म हमसे दूर हो रहते हैं'। अपने भले बुरे कर्मों का दायित्व नहीं रहता।*

चौथा दार्शनिक कहता है—'प्राणियों के संक्लेश के के लिये कोई हेतु नहीं है, बिना किसी कारण के प्राणी संक्लेशित होते हैं, ऐसे ही विशुद्धि के लिये भी हेतु-प्रत्यय का अभाव है। सभी भवितव्यता के वशीभूत हैं।'

हम देखते हैं कि सिर्फ एक दिन के नहीं खाने से शरीर कुछ दुबला पड़ जाता है और घी, दही, दूध आदि ओजपूर्ण भोजन के सेवन से शीघ्र ही गात्र स्थूल और बलवान हो जाते हैं। व्यक्ति की पैदाइश भी तो माता-पिता, शुक्रशोणित और गन्धर्व (= माता के पेट में प्रतिसन्धि ग्रहण करने वाली चित्त-सन्तति) के संयोग पर ही निर्भर है, फिर कैसे माना जाय कि प्राणियों के कर्म-कलाप हेतु-प्रत्यय रहित हैं और बिना किसी हेतु के उनकी शुद्धि अथवा संक्लेशिता सम्भव है? नाना प्रकार के कुशल-अकुशल कर्मों के द्वारा अच्छे बुरे फलों की प्राप्ति के बावजूद भी अहेतुकवाद कहाँ तक ठीक ठहरता है।†

पाँचवाँ दार्शनिक कहता है—'व्यक्ति पुण्य करे अथवा पाप, वह चौरासी हजार महाकल्पों तक उन-उन योनियों में दौड़ते रहने के पश्चात् ही निर्वाण पायेगा। आत्मा नित्यध्रुव, शाश्वत, अपरिवर्त्तनशील और कूटस्थायी है, सुख-

* मिलाओ अंगुत्तर निकाय ३, ४, ५ और संयुत्त निकाय ३, २३, १, ६।

† मिलाओ संयुत्त निकाय ३, २३, १, ९ और दीघ निकाय १, १।

दुःख नपे तुले हुए हैं। उनका घटाव बढ़ाव नहीं होता, जैसे कि सूत की गोली फेंकने पर उधरती हुई गिरती है, ऐसे ही मूर्ख पण्डित—सभी आवागमन में पड़कर दुःख का अन्त करेंगे।'

यदि सुख-दुःख नपे-तुले बराबर हैं तो क्या कारण है कि एक जीवनपर्यन्त पेट भर खाना नहीं पाता और दूसरा सर्वदा मालपूवे उड़ाता सुख की करवटें बदलता है? अगर पुण्य पाप नहीं है, चौरासी हजार कल्पों के पश्चात् निर्वाण-लाभ अवश्यम्भावी है, तो गृहस्थ और श्रमण में फर्क ही क्या? वस्तुतः संसार शुद्धि वाद में न तो जीवहिंसा अनुचित ठहरती है और न चोरी, व्यभिचार, झूठ, कटुवचन, आदि। पाप-पुण्य नहीं मानने वाले को संसार में कोई भी बुरा काम गुनाह भरा नहीं।

कूटस्थ आत्मभाव में हमारी सारी क्रियायें हमारे वशीभूत अपेक्ष्य हैं, किन्तु होता है ठीक इसके विपरीत। एक क्षण पहले की बात भी स्मृति-पटल पर नहीं दीखती, दो चार दिन अथवा वर्ष भर की तो दरकिनार। आत्म-परिकल्पना भी आत्मा के लिए सिद्ध नहीं होती। क्षण-क्षण बदलने वाला नाम-रूपों का योग (= पञ्चस्कन्ध) सर्वथा अनित्य, दुःख और अनात्म है।'*

( २ )

भगवान् बुद्ध ने पुरवले कर्मों को इनकार नहीं किया, उन्होंने भी कहा—'सभी सत्व अपने कर्मों के साथी हैं। कर्म-दायाद हैं। कर्म ही उनकी योनि है। वे कर्म-बन्धु हैं। उनका रक्षक या विनाशक कर्म ही इस हीन-प्रणीतता में विभक्त करता है। इस जीवन में उनके कर्म और विपाक मौजूद हैं। विपाक कर्म से उत्पन्न होता तथा इस प्रकार सत्व की उत्पत्ति का सिलसिला बँध जाता है। परन्तु "सभी दुःख पुरवले कर्मों के ही विपाक हैं।"—ऐसा नहीं कबूल किया।

हम देखते हैं कि वात, पित्त, कफ़ और सन्निपात के प्रकोप से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं ऋतु तथा विषम-आहार-पान के कारण भी नाना रोग उठ खड़े होते हैं। बहुत से लोग जीवन से आज़िज हो उपक्रम कर मर जाते हैं। कोई रेल से कट मरता है। कोई विष खा लेता है। कोई आत्म-हत्या के अन्यतम प्रयोग से मर जाता है। इसलिए भगवान् बुद्ध ने सभी दुःखों की उत्पत्ति के आठ कारणों को बतलाया। उन्होंने कहा—' '(१) वात प्रकोप (२) पित्त प्रकोप (३) कफ़ प्रकोप (४) सन्निपात (५) ऋतु (६) विषमाहार (७) औपक्रमिक और (८) कर्म-विपाक दुःखों की उत्पत्ति के कारण हैं, हेतु हैं, निदान हैं।"

पित्तं सेम्हञ्च वातो च सन्निपाता उतूनि च।
विसमं ओपक्कमिको च कम्मविपाकेन अट्ठमी॥

अतीतांशवादी कह सकता है कि यह सभी पुरवले कर्मों की ही देन है किन्तु अगर ऐसा होता तो उनके जुदा-जुदा लक्षण न दीख पड़ते। हम देखते हैं कि जाड़ा, गर्मी भूख, प्यास, अधिक भोजन, स्थान, परिश्रम, दौड़-धूप, उपक्रम और कर्म-विपाक—इन दस कारणों से वात प्रकोप होता है। इनमें नव कारण न तो भूतकालिक हैं और न भविष्यत् कालिक। ये सभी वर्त्तमान कालिक हैं। अतः यह मानना ठीक नहीं उतरता है कि सभी रोग पुरवले कर्मों के ही विपाक हैं। ऐसे ही पित्त, कफ भी जाड़ा, गर्मी, विषमाहार-पान से प्रकुप्त होते हैं। भली-भाँति विचार कर देखने पर दीख पड़ता है कि पुरवले कर्मों से उत्पन्न होनेवाली दुःखादि वेदनायें अवशेष कारणों से उत्पन्न वेदनाओं की अपेक्षा बहुत न्यून हैं।

भगवान् ने सभी कर्मों का चार प्रकार से विभाजन किया है—(१) कृत्य के अनुसार (२) विपाक देने के पर्याय से (३) विपाक के काल के अनुसार (४) विपाक के स्थान के अनुसार।*

इस प्रकार बुद्ध ने ईश्वर की गुलामी से निकालते और आत्मा के नित्य, शाश्वत होने की बुरी धारणा को त्यागते हुए कहा है—"भिक्षुओ, सभी बुद्ध कर्मवादी, क्रियावादी, वीर्यवादी होते हैं, मैं भी इन्हीं तीनों वादों का समर्थक हूँ, इन्हीं की शिक्षा देता हूँ। जो ऐसा कहते हैं कि कर्म नहीं है, वीर्य (उद्योग) नहीं है, क्रिया नहीं है, वे केशकम्बल जैसे घृणित हैं।"

जब तक पाप-कर्म का विपाक नहीं मिलता है, तब तक मूर्ख आदमी मधु के समान समझता है, किन्तु जब पाप का विपाक मिलता है, तब दुःखी होता है। बहुत

* मिलाओ, संयुत्त निकाय २, २३, १, ८ इत्यादि।

से ऐसे कर्म हैं जो ताजे दूध की भाँति तुरन्त फल नहीं देते, वे भस्म से ढँकी आग की भाँति दग्ध करते हुए मूर्ख लोगों का पीछा करते हैं। अस्तु—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सारे पाप (कर्मों) का न करना, पुण्यों का सञ्चय करना, अपने चित्त को परिशुद्ध करना—यह बुद्धों की शिक्षा है।

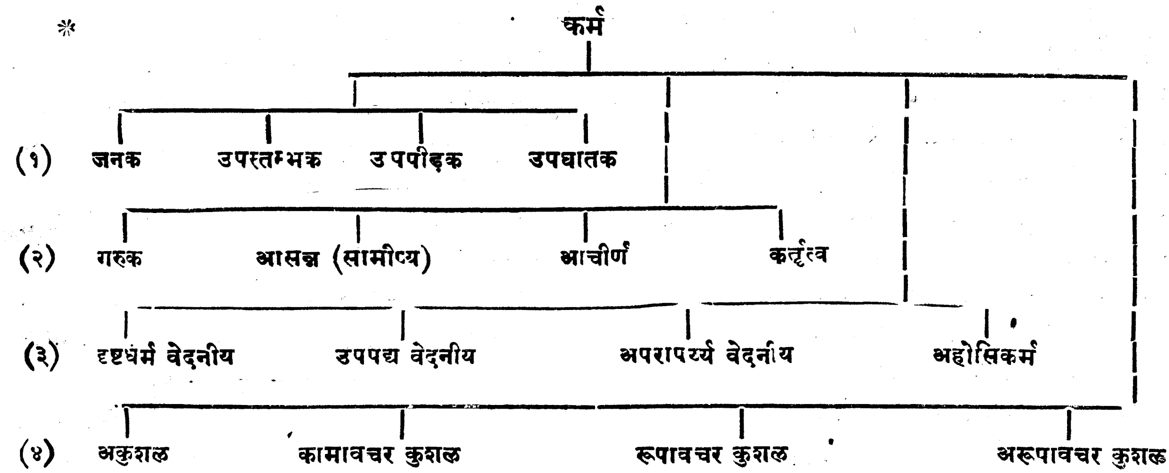


---

# मूलगंध कुटी विहार के भित्ति-चित्र

श्री बी० एन० सरस्वती

मूलगंध कुटी विहार की भव्य दीवारों पर जापान के प्रसिद्ध चित्रकार श्री कोसेत्सु नोसु ने अपनी ओजस्विनी तूलिका सर्वप्रथम १९३१ ई० में चलायी। चार वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात् उनका यह कार्य सफल हुआ। आज सारनाथ की पवित्र भूमि में जो कोई मानव के अन्धतम हृदय में ज्ञान की ज्योति दिखाने वाले भगवान् बुद्ध पर प्रेमाञ्जलि अर्पित करने आता है, वह अवश्य ही इस भित्ति-चित्र को देखकर उस अमर कलाकार की प्रशंसा किये बिना नहीं जाता। श्री नोसु के इस कला सौष्ठव ने सारनाथ की महत्ता में सक्रिय योग दिया है। आज दर्शक यदि भगवान् बुद्ध का दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं, तो इस असाधारण कला का निरीक्षण भी उन्हें कम हर्षित तथा कम आकर्षित नहीं करता।

बौद्धकालीन कला का चरम विकास हम अजन्ता की चित्रकारी में पाते हैं। कलाकार नोसु ने भी प्रायः उसी आधार पर अपने सजीव भित्ति-चित्र की कल्पना की। इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

किसी भी राष्ट्र की कला उसके इतिहास की परिचायिका होती है। इतिहास के पृष्ठों में हमें केवल लिखित सामग्री मिलती है, परन्तु कला के द्वारा राष्ट्र इतिहास के सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। इसी प्रेरणा से प्रेरित तथा भगवान् की प्रीत में निमग्न होकर ही कलाकार नोसु ने भगवान् बुद्ध के जीवन इतिहास को अपने चित्रों में अभिव्यक्त किया है जिस कलात्मक दृश्य से शताब्दियों के इतिहास को हम थोड़े समय में समझ लेते हैं। भगवान् बुद्ध के जीवन का यह कलात्मक इतिहास हमारे हृदय में किताब के पन्नों पर लिखित इतिहास के अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डालता है। ये सजीव चित्र आज कई

शताब्दियों का प्राचीन इतिहास हमारी आँखों के सामने नूतन रूप में रख देते हैं। जो कला भौतिक उपकरणों से जितनी अधिक स्वतन्त्र होकर भावों की अधिकाधिक अभिव्यंजना में समर्थ होंगी वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ समझी जावेगी। इस पहलू से हमें नोसु की कला अत्यधिक महान् जँचती है। कलाकार सिद्धार्थ के गृहत्याग का जब चित्र उपस्थित करता है, तो उस समय यशोधरा तथा पुत्र राहुल का निद्रा-मग्न अवस्था में त्यागने के अवसर पर मानव के अंतर हृदय में उठती हुयी सहज स्वाभाविक भावनाओं का इस तरह निरूपण किया है कि सिद्धार्थ के चित्र को देखते ही उनकी भावना प्रगट हो जाती है। इसी तरह आनन्द और अछूत कन्या का दृश्य जब हमारे सामने आता है तो उनकी मुद्रा से ही हम उनके हृदय के अंतरंग को जान जाते हैं। कला की सबसे बड़ी विशेषता है चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति। अर्थात् प्रत्येक ललित कला की पृष्ठभूमि में प्रकृति की नकल रहती है। इसी तरह चित्र-कला की सफलता चित्र के बाह्यालंकारों पर नहीं वरन् उसकी स्वाभाविकता पर निर्भर करती है। यहाँ दो तरह के कलाकार को देखिये; जो किसी रमणी के चित्र बनाने में उस पर आभूषण के सुनहले रंग चढ़ा कर अपने को कलाकार में आँकते हैं और दूसरे तरह के वे हैं जो रमणी के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करते हैं। प्रथम श्रेणी के कलाकार से ऊपर लिखित सिद्धान्त की पुष्टि नहीं हो पाती। वे रंग चढ़ाने में ही अपना उद्देश्य भूल जाते हैं। अतः उसमें वह कृत्रिम सौन्दर्य, सौन्दर्य की श्रेणी से नीचे उतर आता है। पर दूसरी श्रेणी के कलाकार से चित्र की स्वाभाविक सुन्दरता, प्रचुर मात्रा में सुन्दर ही प्रतीत होती। हमारे नोसु भी द्वितीय श्रेणी के चित्रकार हैं। उन्होंने कला के कर्म को ठीक-ठीक समझा, या यों कह सकते हैं कि वे एक सफल कलाकार हैं। उनकी चित्रकारी में हमें विशिष्ट अलंकार तो नहीं मिलते पर भावों की अभिव्यंजना तो प्रचुर रूप में मिलती ही है। उनके प्रायः प्रत्येक चित्र भावों से ओत-प्रोत हैं। "सुजाता की खीर" शीर्षक चित्र में भगवान् बुद्ध का शुष्क शरीर तथा सुजाता की खीर समर्पण का भाव उन्होंने इस रूप में दर्शाया है कि सुजाता की समर्पण की भावनापूर्ण रूपेण स्पष्ट हो जाती हैं। इस तरह उन्होंने प्रत्येक चित्र में भावों की अभिव्यंजना में मस्त हो अपनी तूलिका चलायी। रंगों का तो उन्होंने इतना सुन्दर उपयोग किया है कि आज भी दर्शकों की पैनी आँखें उस चित्र की ओर से फिरने को नहीं करती। वास्तव में नोसु की चित्रकला दर्शकों के हृदय पर सहज रूप में भगवान् बुद्ध के प्रति प्रीति का जयघोष कर देती, जिसमें प्रायः उस अमर कलाकार की श्रद्धा की ध्वनि भी मिश्रित होने से वंचित नहीं रहती।

रूसी विद्वान्, टॉलस्टाय लिखता है—"कला मानवीय चेष्टा है। चेष्टा वही है कि एक मानव ज्ञान पूर्वक कुछ संकेतों द्वारा उन भावों को प्रकट करता है, जिनका उसने अपने जीवन में साक्षात्कार किया है। इन भावनाओं का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है, वे भी उनकी अनुभूति करते हैं।" वस्तुतः नोसु ने अपने जीवन में भगवान् बुद्ध के प्रति प्रीति की एक प्रबल प्रेरणा पायी और उसको हम सफल कलाकार इसलिये कहते हैं कि दर्शक भी उसकी उस कला सौष्टव में भगवान् बुद्ध के प्रति प्रीति-भावना से प्रेरित होते हैं। कलाकार की महानता को बतलाते हुए भारत के प्रसिद्ध कलाकार, श्री अवनेन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है—"कलाकार के मन का पता उसकी कला में चलता है। इसलिये हम कलाकार का आदर करते हैं। नहीं तो हिमालय पहाड़ को कई इञ्च के चतुष्कोण फ्रेम में बाँधकर दीवार पर लटका रखने में मुझे क्या लाभ है? हमें तो हिमालय के मन की बात की ही आवश्यकता है। कलाकार का तो यही काम है कि वह अपने मन से पार्थिव वस्तु के मन की बात को समझे और इस बात को हमारे मन में अंकित कर दे।" इस कथन की पुष्टि हमें श्री नोसु की चित्रकला में मिलती है। वह भगवान् बुद्ध के जीवन के प्रत्येक घटना को हमारे मन में सत्य के परे नहीं अंकित किया। सत्यता की जिस रूपरेखा पर उसने भगवान् बुद्ध के जीवन को चित्रों में अंकित किया वह किसी भी कला मर्मज्ञ के लिए श्रेय एवं प्रेय हो सकता। वस्तुतः उन चित्रों को देखने से नोसु को कलाकार होने के पहले एक सच्चे बौद्ध होने की

( शेषांश १०४ पृष्ठ पर )

# तथागत का धर्मराज्य

श्री अनन्त

भगवान् बुद्ध में दस बल थे, उन्हीं दसबलों के कारण वे 'दशबल' कहलाते थे और उन्हीं दशबलों से वे 'ब्रह्म चक्र' का प्रवर्तन भी करते थे, जो चक्र अन्य किसी भी श्रमण, ब्राह्मण, देव, मार, ब्रह्मा या लोक के किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रवर्तित नहीं हो सकता था। वह ब्रह्मचक्र किसी भी प्रकार से पलटने वाला नहीं था। उस ब्रह्मचक्र के प्रभाव में मनुष्य, देवता, मार और ब्रह्मा सभी थे। तथागत उस धर्मराज्य के अनुपम धर्मराजा थे। 'ब्रह्म चक्र', 'धर्मचक्र' का ही पर्यायवाची शब्द है जो बुद्ध शासनका अपना पारिभाषिक शब्द है।

धर्मराज तथागत ने ऐसे अनुपम धर्मचक्र को प्रवर्तित करने से पूर्व एक धर्मनगर की स्थापना की थी। उस धर्मनगर के प्राकार 'शील' (सदाचार) के बने थे। उसके चारों ओर ह्री (लज्जा) की खाई खुदी थी। ज्ञान उसके फाटक पर चौकसी करता था। उस धर्मनगरमें उद्योग की अटारियाँ बनी थीं। श्रद्धा की नींव बनी थी और स्मृति द्वारपाल का काम करती थी। प्रज्ञा के बड़े बड़े भवन बने थे। उसमें धर्मोपदेश के सूत्रों के सुन्दर-सुन्दर उद्यान लगे थे। उस धर्मनगर में धर्म की ही चौक बसी थी। विनय की कचहरी लगी थी। उसकी सड़कें स्मृति प्रस्थान की थीं, जिनके किनारे किनारे नाना प्रकार की सुगन्धियों की दूकानें सजी थीं। वे सुगन्धियाँ दिव्य और अनुपम थीं। साधारण और लौकिक सुगन्धियाँ केवल सीधी हवा की ओर ही बहा करती हैं, किन्तु वे उल्टी, सल्टी, नीचे, ऊपर सर्वत्र अपनी गमगमाहट से सबको अपनी ओर आकर्षित किया करती थीं। लोग उन्हें सूँघकर फिर राग, द्वेष, मोह की ओर नहीं लौटते थे। जो उस धर्मनगर में प्रवेश कर जाते थे, वे उस नगर के अमूल्य रत्नों को अपना कर वहीं के नागरिक बन जाते थे, उन्हें कामवासनामय-जगत् से उदासीनता हो आती थी। वे नैष्कर्म्य के पुजारी हो परम शांति की ओर अग्रसर होने लगते थे और अल्पकाल में ही उन्हें ऐसा ज्ञान हो आता था—"जन्मक्षीण हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, जो कुछ करना था, सो कर लिया और कुछ यहाँ करने के लिये शेष नहीं रहा।" वे तथागत के पास जाते और प्रसन्नतापूर्वक अपने उदानों (प्रीति वाक्यों को सुनाते थे—"किलेसा झापिता मय्हं, कतं बुद्धस्स सासनं" मेरे सारे क्लेश, (राग, द्वेष, मोह) जला डाले गये, मैंने बुद्ध शासन को पूर्ण कर लिया।

तथागत ने अपने धर्मराज्य की स्थापना सर्वप्रथम आषाढ़ पूर्णिमा को ऋषिपतन मृगदाय (सारनाथ) में की थी और धर्मचक्र को प्रवर्तित कर वहीं अपने धर्मनगर का उद्घाटन भी। जिस प्रकार साधारण और लौकिक शासक श्वेत-छत्र, राजमुकुट, जूते, चँवर, तलवार, बहुमूल्य पलङ्ग इत्यादि राज्य भाण्डों का उपयोग करते हैं, उसी प्रकार उन अनुपम धर्मराज ने चार स्मृतिप्रस्थान, चार सम्यक-प्रधान, चार ऋद्धिपाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यङ्ग और आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग को अपने काम में लाया।

धर्मराज तथागत ने अपने धर्मराज्य के नागरिकों को सदा कर्मवादी, क्रियावादी, वीर्यवादी बनाया। उन्होंने अक्रियावाद को केशकम्बल जैसा घृणित कहा। अनुशासन करते हुये सदा ही उन्होंने भिक्षुओं को कहा—"भिक्षुओ! श्रद्धालु श्रावक के लिये शास्ता के शासन में परियोग के लिये वर्तते समय शास्ता का शासन ओजवान् होता है। भिक्षुओ! तुममें ऐसी दृढ़ता होनी चाहिये—चाहे चमड़ा, नस और हड्डी ही बच रहे, शरीर का रक्त-मांस सूख क्यों न जाय, किन्तु पुरुष के स्थाम एवं पराक्रम से जो कुछ प्राप्य है, उसे बिना पाये मेरा उद्योग न रुकेगा।"

धर्मराज्य के अपराधियों को जला डालना, खत्म कर देना, निर्वासित कर देना, दबा डालना और उन्हें दूर भगा देना ही सजायें हैं। धर्मराज्य के अपराधी हैं क्रोध, मान, लोभ, द्वेष, मोह, डाह, मात्सर्य आदि अकुशल धर्म। इनके त्याग के लिये तथागत जामिन भी होते थे और कहते थे कि इन्हें त्यागो, मैं तुम्हारी मुक्ति के लिये जामिन होता हूँ, किन्तु परम दयालु तथागत इन अपराधियों के साथ भिड़ने में, संग्राम करने में, उन्हें जला डालने में दया करने को अवकाश नहीं देते थे। किंतु जब ये अपराधी दूसरे को पीड़ित करते थे और उन्हें पराजित करके उनके सहयोग से आ जुटते थे तब तथागत सहनशीलता का उपदेश देते थे और कहते थे--"सहलो, सह लेना परम तप है।" "भिक्षुओ! चोर लुटेरे चाहे दोनों ओर मुठिया लगे आरे से भी अंग अंग को चीरें तो भी यदि वह मन को दूषित करे तो वह मेरा शासन कर नहीं है। वहाँ पर भी भिक्षुओ! ऐसा सीखना चाहिए--मैं अपने चित्त को मैत्री से प्लावित कर विहरूँगा।"

धर्मराज तथागत अपने धर्मराज्य के कर्त्तव्यों को बतलाते हुए कहा करते थे--"भिक्षुओ! यह ब्रह्मचर्य लाभ, सत्कार, प्रशंसा, पाने के लिये नहीं है। शील-सम्पत्ति के लाभ के लिए नहीं है, न समाधि-सम्पत्ति के लाभ के लिये है, न ज्ञान-दर्शन के लाभ के लिये है। भिक्षुओ! जो यह न च्युत होनेवाली चित्त की मुक्ति है, इसी के लिये यह ब्रह्मचर्य है। यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है।" "भिक्षुओ! मैं बेड़े की भाँति पार जाने के लिये तुम्हें धर्म का उपदेश देता हूँ, पकड़कर रखने के लिये नहीं।" "एकत्रित होने पर भिक्षुओ! तुम्हारे लिये दो ही कर्त्तव्य हैं-(१) धार्मिक कथा या (२) आर्य तूष्णी-भाव (उत्तम मौन)।"

तथागत के धर्मराज्य में सभी लोग समान थे, किसी प्रकार का सामाजिक या धार्मिक भेदभाव नहीं था। जिस प्रकार छोटी-बड़ी सभी नदियाँ समुद्र में मिलकर समान जलवाली हो जाती हैं, उनका नाम, गोत्र लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार तथागत के धर्मराज्य में प्रवेश पाते ही सब अपने नाम, गोत्र, वंश, कुल की मर्यादा को त्याग कर एक समान हो जाते थे। धर्मराज्य के नागरिक चार भागों में विभक्त थे-(१) भिक्षु (२) भिक्षुणी, (३) उपासक और (४) उपासिका। उनकी सामर्थ्य के अनुसार तथागत का सब के लिए अनुशासन था। गृहस्थ और प्रव्रजितों की भी सीमाबन्दी थी। प्रव्रजितों को गृहस्थों के प्रगाढ़ संसर्ग से दूर रहने की आज्ञा थी। तथागत सदा ध्यान रखते थे कि प्रव्रजित गृहस्थों में मिल-जुलकर कहीं अपने उद्देश्य को न भूल जायँ और उन्हें 'मार' अपने वश में कर ले।

तथागत प्रव्रजितों को अपने समान ही रहने की शिक्षा देते थे। जिन कार्यों को करने में उन्हें स्वयं सुख की अनुभूति होती थी, उसे वे भिक्षुओं को भी करने के लिये आज्ञा देते थे। तथागत ने जब एकाहारी व्रत ग्रहण किया और देखा कि उसी में सुख है तो भिक्षुओं को भी कहा--'भिक्षुओ! मैं एक आसन-भोजन का सेवन करता हूँ। एक आसन-भोजन का सेवन करने से मैं अपने में निरोगिता, स्फूर्ति, बल और सुख का अनुभव करता हूँ। आओ भिक्षुओ! तुम भी एक आसन-भोजन को सेवन करो। एक आसन-भोजन करने से तुम भी निरोगिता स्फूर्ति, बल और सुख का अनुभव करोगे।" तथागत के धर्मराज्य में कभी भी किसी प्रकार के बल का प्रयोग नहीं किया जाता था और न तो तथागत अपनी बातों को बिना सोचे-समझे ग्रहण कर लेने को ही कहते थे, उनका उपदेश था कि "मेरी किसी भी बात को ग्रहण करने से पूर्व उसे बुद्धि की कसौटी पर खूब कस लो, यदि वह तुम्हें जँचे तो ग्रहण करो और यदि न जँचे तो त्याग दो।" धर्मराज्य में बुद्धि की पूरी स्वतन्त्रता थी। सब लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार-विमर्ष करने के लिये स्वतन्त्र थे। तथागत ने उन्हें 'महापदेश' की अनुपम कसौटी सौंप दी थी, जिससे वे अपने बुद्धि-स्वातन्त्र्य का प्रयोग भली प्रकार कर सकते थे।

तथागत के धर्मराज्य के धर्म सेनापति आयुष्मान् सारिपुत्र थे। वे तथागत द्वारा प्रवर्तित 'धर्मचक्र' को अनुप्रवर्तन करते थे। जो अनन्तज्ञानी, सांसारिक वस्तुओं में नहीं फँसनेवाले, अतुल्यगुण, यश, बल, तेजवाले थे और जिन्होंने प्रज्ञाकी सीमा पा ली थी। ऋद्धिमान् भिक्षु धर्म

राज्य के पुरोहित थे और उसके नागरिक थे—सूत्रों के जानने वाले, विनय को जानने वाले, अभिधर्म को जानने वाले, धर्म के उपदेशक, जातक-कथाओं को कहने वाले पाँच निकायों को याद करने वाले, शील, समाधि और प्रज्ञा से युक्त, बोध्यङ्ग-भावना में लगे रहने वाले। वह धर्मराज्य बाँस या सरकण्डे के झाड़के समान अर्हतों से खचाखच भरा रहता था। राग, द्वेष और मोह रहित क्षीणाश्रव (जीवन मुक्त) तृष्णा रहित तथा उपादान को नाश कर देने वाले उसमें रहते थे। जंगल में रहने वाले, धुताङ्गधारी ध्यान करने वाले, रूखे चीवर वाले, विवेक में रत, धीर लोग उसमें बास करते थे धुताङ्गधारी ही उस राज्य के हाकिम थे। दिव्य चक्षु प्राप्त प्रकाश जलाने वाले थे। आगम के पण्डित चौकीदार थे और विमुक्ति प्राप्त थे माली। फूल बेचने वाले आर्यसत्यों के रहस्य को जानने वाले थे तथा शीलवान थे गंधी।

ऐसे अनुपम धर्मराज्य के तथागत राजा थे, जो अपने विशाल एवं अद्भुत, आश्चर्यमयी राज्य सम्पत्ति पर अपनत्व नहीं रखते थे, उन्हें कभी भी ऐसा नहीं होता था कि मैं भिक्षु-संघ को धारण करता हूँ और भिक्षुसंघ मेरे उद्देश्य से है। वे जो कुछ भी कहते थे स्पष्ट कहते थे। आचार्य मुष्टि नहीं रखते थे वे बहुजन के हित-सुख का ध्यान रखते हुये ही किसी बात को कहते भी थे।

तथागत का धर्मराज्य भीतर-बाहर सब प्रकार से परिशुद्ध, निर्मल औ एक समान आकर्षक था। वह मधुपिण्डिक (लड्डू) के समान चारों ओर से सुन्दर और माधुर्य पूर्ण था। तथागत ने अपने श्रावकों को धर्मराज्य में भली प्रकार विचरण करने के लिये करुणा, प्रेम, दया और अनुकम्पा से प्रेरित-हृदय हो यह आदेश दिया था—"भिक्षुओ! श्रावकों के हितैषी, अनुकम्पक शास्ता को अनुकम्पा करके जो करना चाहिए, वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। भिक्षुओ! यह वृक्षमूल हैं, यह सूने घर हैं, ध्यान रत होओ। भिक्षुओ! मत प्रमाद करो, मत पीछे अफसोस करने वाले बनना—यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है।"

तथागत के उस अनुपम धर्मराज्य की स्मृति को बार-बार प्रणाम है और प्रणाम है उसके अनुप्रवर्तक तथा सभी नागरिकों को। क्या वह 'तथागत का धर्मराज्य' स्वप्न में भी देखने को मिलेगा?


## भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

### शेरो-शायरी

[ उर्दू के १५०० शेर और १६० नज्म ]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्राचीन और वर्तमान कवियों में लोकप्रिय ३१ कलाकारों के मर्मस्पर्शी पद्यों का संकलन और उर्दू-कविता की गतिविधि का आलोचनात्मक परिचय। हिन्दी में यह संकलन सर्वथा मौलिक और बेजोड़ है। मूल्य ८)

### मुक्तिदूत

श्री वीरेन्द्रकुमार एम. ए.

उपन्यास क्या है, गद्यकाव्य का ललित निदर्शन है......मर्मज्ञों ने मुक्तकंठ प्रशंसा की है.....। मूल्य ४॥)

### ज्ञानोदय [ मासिक ]

वार्षिक मूल्य ६)

यू०पी० सरकार से १०००) रु० पुरस्कृत—

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की अमरकृति

### पथचिह्न

इसमें लेखक ने अपनी स्वर्गीया बहिन के दिव्य-संस्मरण लिखे हैं। साथ ही साथ साहित्यिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का मर्मस्पर्शी वर्णन भी किया है। पुस्तक मुख्यतः संस्कृति और कला की दिशा में है और युग के आन्तरिक निर्माण की रचनात्मक प्रेरणा देती है। सजिल्द मूल्य २)

### केवल ज्ञान प्रश्न चूडामणि

सं० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य

इस ज्योतिष ग्रंथ के स्वाध्याय से साधारण पाठक भी ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। मूल्य ४)

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

# नये प्रकाशन

**आइ कुड् नॉट सेव बापू**—लेखक : डा० जगदीशचन्द्र जैन। प्रकाशक—जागरण साहित्य मन्दिर, कमच्छा, बनारस। पृष्ठ संख्या २४१, मूल्य ३)।

गांधी जी के विरुद्ध षड्यन्त्र, उनकी निर्मम हत्या और न्यायालय की कानूनी कार्यवाही ही इस पुस्तक का विषय है। लेखक की भाषा अत्यन्त ही सरल एवं सुबोध है। गांधी जी की हत्या के विषय में बहुत सी बातें जो जनसाधारण को ज्ञात नहीं हैं वे सब इस पुस्तक से जानी जा सकती हैं।

लेखक ने संक्षेप में बड़ी योग्यता के साथ उन प्रवृत्तियों का भी विश्लेषण करने का प्रयास किया है जो भारत विभाजन के कारण उत्पन्न हो गई थीं और जिनके फलस्वरूप नैतिक अव्यवस्था फैल गई थी। भारत की राजनीति से आध्यात्मिक तत्त्व सर्वथा उठ रहे थे। मानवता दानवता में परिणत हो रही थी। लोगों के मस्तिष्क और विचार दूषित हो रहे थे। गाँधी जी को इन दानवीय प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर देना पड़ा। लेखक का विश्वास है कि अधिकारीवर्ग की शिथिलता और असतर्कता के ही कारण बापू को अपनी बलि देनी पड़ी। लेखक ने बड़ी सरलता के साथ यह दिखलाया है कि किस प्रकार एक शरणार्थी युवक इन दानवीय प्रवृत्तियों का शिकार हो जाता है, किस प्रकार उसमें प्रतिशोध और हिंसा की भावना जागृत होती है, किस प्रकार लेखक उससे सारे षड्यन्त्र का हाल मालूम कर देता है और किस प्रकार इस षड्यन्त्र का पता अधिकारीवर्ग को देता है, इत्यादि।

गाँधी जी को इस षड्यन्त्र से बचाने का जो भी प्रयास लेखक ने किया, सब विफल हुआ। यही लेखक के जीवन का सबसे बड़ा पश्चाताप है। लेखक की शैली आडम्बर रहित, सौंदर्य एवं जीवन से ओतप्रोत है।

**विज्ञान के चमत्कार**—लेखक : प्रिंसिपल छबीदास प्रकाशक : मरुभूमि जीवन ग्रन्थ माला, संगरिया, बीकानेर। पृष्ठ संख्या ९२, मूल्य १)

इस पुस्तक में गुड़ से पेट्रोल, कृत्रिम ऊन, न जलने वाले वस्त्र, बारहमासी गेहूँ, बर्फ के मकान आदि पदार्थ कैसे बनते हैं, इस प्रकार की अनेक ज्ञातव्य बातें बताई गई हैं। सृष्टि के वैचित्र्य की यह वैज्ञानिक व्याख्या पाठकों की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ मनोरंजन भी करती है।

**आर्थिक कहानियाँ**—लेखक: ठाकुर देशराज। प्रकाशक: नवजीवन प्रकाशन लि०, संगरिया, बीकानेर। पृष्ठ संख्या ९८ मूल्य-अज्ञात।

अर्थशास्त्र जैसे कठिन विषय को सरल ढंग से कहानी के रूप में लेखक ने सफलता से रखा है। धन और उसका माध्यम, मुद्रा, मापतोल, व्यापार, यातायात, उत्पादन, सहकारिता, बैंक, हुण्डी, आर्थिक विषमता आदि विषयों को कहानियों की बातचीत में लेखक ने बच्चों को समझाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार की सरल, रोचक शैली में लिखी गई पुस्तकें बच्चों के लिए निस्सन्देह बहुत उपयोगी होंगी।


"दक्खिनी हिन्द"

(मद्रास-सरकार की हिन्दुस्तानी मासिक पत्रिका)

★ उत्तर और दक्षिण को साथ चलकर ही समृद्ध एवं शक्तिशाली नवभारत का निर्माण करना है।

★ "दक्खिनी हिन्द" उत्तर और दक्षिण के बीच एक सांस्कृतिक सेतु है।

★ सालाना चंदा : सिर्फ चार रुपए। वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। मनी-आर्डर से चंदा पेशगी भेजें।

चंदा भेजने का पता

डाइरेक्टर आफ़ इन्फ़रमेशन & पब्लिसिटी,
फ़ोर्ट सेन्ट जार्ज, मद्रास

# सम्पादकीय

## भारत में बौद्धधर्म का नव-जागरण

बौद्ध धर्म विश्वका अनुपम धर्म है। इससे संसारके बहुसंख्यक प्राणियोंका कल्याण हुआ एवं होता आ रहा है। यद्यपि इसकी जन्मभूमि भारत महादेश है, यह भारतका गौरव है, इससे ही विश्वमें भारत देशकी कीर्ति बढ़ी है, सांस्कृतिक अभ्युत्थान एवं प्रसारमें जिस चमत्कारिक एवं अहिंसक रूपसे इसने अग्र स्थान ग्रहण किया है, यह इतिहासकी एक स्वर्ण-श्रृङ्खला है, भारतका स्वर्ण-युग बौद्ध-युग है, जबतक भारतमें यह व्याप्त रहा तबतक हमारा देश धन धान्यसे सम्पन्न एवं सुखी रहा, बाह्य देशोंका गुरु बना रहा, विदेशी लोग इसके सार्वभौमिक सिद्धान्तसे सदा प्रभावित रहे, किन्तु हमारे देशकेही वर्ग विशेष की जलन एवं विदेशी आक्रमणोंसे—जो वस्तुतः उस जलनकाही फल था—इसके अनुयायियों (बौद्धों) की शक्ति क्षीण हो गई। उसके बाद भारतमें एक ऐसा भी समय देखनेको मिला जबकि भगवान् बुद्ध एवं बौद्धधर्मके जाननेवालोंका एकदम अभाव हो गया। कुछ दिन पूर्वतक लोग बुद्ध-मन्दिरोंमें जाकर पूछा करते थे—"क्या यह बर्माके भगवान् हैं?"

हमारे देशके पण्डित नामधारियोंने अपनी अज्ञानताका परिचय देनेमें भी उठा न रखा। 'ऐतिहासिक बुद्ध' एवं 'पौराणिक बुद्ध' बनाना स्वार्थ-लोलुप वर्ग-विशेषका ही काम था, किन्तु अब वह समय बीत गया। इस समय जबकि हमारा महादेश साम्प्रदायिक अग्निमें जल रहा है, जाति-भेद, छूआछूत, नीच-ऊँच, स्वेच्छाचारिता, अन्याय, धार्मिक-पाखण्ड, स्वच्छन्दता एवं उच्छृंखलतासे लोग ऊब गये हैं, तब ऐसे समयमें अब इन सब बातोंसे रहित प्रजातन्त्रके सिद्धान्तके अनुकूल, समता एवं मैत्रीके अद्वितीय परिपोषक बौद्धधर्मकी ओरही सबकी दृष्टि जा रही है।

रंगून में भारत के प्रधान मन्त्री नेहरू जी ने भारत में बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में जो यह कहा था कि 'भारत भगवान् बुद्ध के उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित है। भारत बौद्ध धर्म के निकटतम सम्बन्ध में आता जा रहा है।' वह अक्षरशः सत्य है। इस समय पीड़ित एवं शोषित वर्गों का ध्यान बौद्ध धर्म की ओर अधिक आकर्षित हो रहा है और यह भी सत्य है कि उन्हें बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शान्ति न प्राप्त होगी। बौद्ध धर्म का सार्वभौम सिद्धान्त न केवल उनके लिए ही, प्रत्युत मानवमात्र के लिए शान्तिदायक और कल्याणकर है।

इधर भारत के विधि मन्त्री डा० अम्बेदकर के बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाने एवं श्री पी० एन० राजभोज के भाषणों तथा अखिल भारतीय परिगणित जातिसंघ द्वारा बौद्ध धर्म को ग्रहण करने की घोषणा से भारत के बहुत से कट्टरपंथी थर्रा गये हैं एवं बुरा-भला कहने लगे हैं, किन्तु उन्हें जरा हृदय पर हाथ रखकर शान्त मन से विचार करना चाहिए कि बौद्ध धर्म—जो अपनी विशेषताओं के ही कारण विश्व-व्याप्त है—भारत का ही अपना धर्म है, जिसे वे 'अपना' कहते भी हैं, अन्य विदेशी धर्मों की अपेक्षा इसके प्रसार से उन्हें क्षोभ क्यों हो रहा है? क्या वे इस देश में भारतीय संस्कृति की अपेक्षा बाह्य देशीय संस्कृति का प्रसार ही चाहते हैं? बौद्ध धर्म ने दर्शन, इतिहास, संस्कृति एवं नैतिक क्षेत्र में भारत की जो सेवा की है, वह किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं हो पायी है। यह बिल्कुल सत्य है कि यदि बौद्ध धर्म न होता तो भारतीय संस्कृति विश्वकी अन्य संस्कृतियों के समक्ष नगण्य समझी जाती और भारतीय जीवन की मिट्टी पलीद हो गई होती। प्राच्य धर्मों में यही एक ऐसा धर्म है जो सभी सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, वंश एवं कुल की मर्यादा को छिन्नभिन्न कर समता की श्रृंखला में बाँधने में समर्थ है। जिस प्रकार समुद्र से मिलते ही सभी सरिताओं का नाम लुप्त हो जाता है एवं सभी के जल का स्वाद भी समान हो जाता है, उसी प्रकार सभी लोग इसे अपनाकर समान हो जाते हैं, उनमें किसी प्रकार का भी भेद नहीं रह जाता। भारत का नैतिक उत्थान यदि हो सकता है तो केवल बौद्ध धर्म के ही अवलम्बन से। बापू ने भी इसीलिए इसे अपना आदर्श माना एवं इसके अहिंसा आदि सिद्धान्तों का प्रचार तथा पालन किया।

---

# बौद्ध-जगत्

## अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ

अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियाँ गत २६ मई को भारतीय वायुसेना के विमान में श्रीनगर से लेह पहुँचाई गईं और वहां उनका भव्य स्वागत हुआ। लद्दाख के प्रधान लामा श्री कुशक बकुला और भारतीय महाबोधि सभा के कुछ सदस्य उनके साथ-साथ गये थे। लेह में २ हजार लामाओं ने इन पवित्र अस्थियों का स्वागत किया। हेमिस गुम्बा के दस वर्षीय शिशु लामा ने प्रार्थना की और परम्परागत बौद्ध विधि से इनकी अभ्यर्थना करके जुलूस के साथ इन्हें शंकर गुम्बा पहुँचाया गया। लद्दाख के लगभग सभी प्रसिद्ध एवं बड़े बौद्ध-विहारों (गुम्बों) में इन अस्थियों का प्रदर्शन हुआ। लद्दाख के बौद्धों ने अपने धार्मिक नृत्य आदि के साथ इनका सर्वत्र स्वागत किया।

लद्दाख से लौटकर पुनः पवित्र अस्थियाँ दिल्ली आयेंगी और वहाँ भी उनका कई दिनों तक स्वागत होगा।

**महामन्त्री को चोट**—लद्दाख-यात्रा में घोड़े से जाते समय भारतीय महाबोधि सभा के महामंत्री ब्रह्मचारी श्री देवप्रिय वलिसिंह जी अचानक घोड़े से गिर पड़े, जिससे उनके दायें हाथ में काफी चोट आई थी। आप कुछ दिनों तक श्रीनगर के अस्पताल में रहे और वहाँ से स्वस्थ होकर गत २२ जून को वायुयान द्वारा कलकत्ता वापस आ गये। अब आप पूर्ण स्वस्थ हैं।

**बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र फ्रांस**—फ्रांसीसी विद्वानों, प्रकाशकों और लेखकों ने अपनी सद्भावना के प्रतीकस्वरूप लंका के बौद्धों को तीन सौ पुस्तकें प्रदान की हैं। अधिकांश पुस्तकें बौद्ध धर्म पर लिखी गई हैं और उनमें धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति तथा कला की नवीनतम गवेषणाओं का उल्लेख है।

यूरोप के देशों में फ्रांस में ही सर्वप्रथम बौद्ध धर्म का अध्ययन आरम्भ किया गया था और १८७० में यूजिन बर्नाफ का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। आज पेरिस विश्वविद्यालय पश्चिम में बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केन्द्र है।

**परिगणित जाति वाले बौद्ध धर्म अपनायेंगे**—गत ११ जून को मद्रास में होने वाले "तामिलनाद परिगणित जाति सम्मेलन" में सभापतिपद से भाषण करते हुए अखिल भारतीय परिगणित जाति-संघ के महामन्त्री श्री पी० एन० राजभोज ने कहा कि केवल मन्दिरों और होटलों में प्रवेश की समानता से कुछ न होगा, हम हिन्दू जाति के अन्य वर्गों के समान ही राजनीतिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं। हमें सरकार में उचित अनुपात में प्रतिनिधित्व चाहिए। हिन्दू धर्म के पास जनता के लिए कोई कार्यक्रम नहीं है, अतः हम भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार करेंगे क्योंकि उसी में हमारा हित है जब तक सामाजिक भेदभाव जारी है तब तक नये संविधान में की गयी व्यवस्थाओं से कुछ न होगा।

सदियों से हम अछूत कहकर अनगिनत सामाजिक असमानताओं के शिकार रहे हैं और आज भी हमारे साथ वही व्यवहार हो रहा है। अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में हुए नेहरू-लियाकत समझौते की चर्चा करते हुए श्री राजभोज ने कहा कि उससे पाकिस्तान की परिगणित जातियों का कोई लाभ नहीं हुआ। इतनी बड़ी संख्या में वहां रहते हुए भी उन्हें उचित प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है।

एक अन्य नेता ने भी भाषण करते हुए कहा कि यदि आज हम लोग बौद्ध धर्म की बात करते हैं तो इसका कारण यह है कि हमें हिन्दू भाइयों से बहुत कष्ट सहने पड़े हैं। अतः यदि शीघ्र इस सामाजिक बुराई को दूर करने की रचनात्मक चेष्टा की गई तो हमें बौद्ध धर्म के अतिरिक्त कहीं और शरण न चाहिए।

---

(१०२ पृष्ठ का शेषांश)

भावना सहज रूप में परिलक्षित होती है। अस्तु, इससे बढ़कर उनकी सफलता के और क्या चिह्न हो सकते। अन्त में हम यही कहेंगे कि अतीत के अध्याय में यदि यह लिखा है कि अशोक ने बुद्ध धर्म के प्रचार में कोई भी कसर नहीं रक्खी तो वर्तमान के इन पृष्ठों में हमें यह लिखना होगा कि श्री नोसु ने भित्ति-चित्र की कला से भगवान् बुद्ध के प्रति प्रेम-भावना का मानव हृदय पर कम आकर्षण नहीं रक्खा।

**उत्तर प्रदेश के परिगणित जातियों की बौद्ध होने की उत्सुकता**—उत्तर प्रदेश के १ करोड़ २२ लाख हरिजनों के बौद्ध हो जाने की बात अभी हाल ही में श्री तिलकचन्द कुरील ने कही है। कुरील महाशय उत्तर प्रदेश के परिगणित जाति-संघ के अध्यक्ष हैं। उन्होंने कहा है कि इस राज्य के सवा करोड़ हरिजन बौद्ध धर्म की दीक्षा ले लेंगे। हम सभी बौद्ध धर्म की दीक्षा के लिए उत्सुक हैं।

**पं० नेहरू के जीवन पर बुद्ध धर्म का प्रभाव**—गत २१ जून को पं० जवाहरलाल नेहरू ने रंगून के एक भोज में भाषण करते हुए कहा—'भारत भगवान् बुद्ध के उपदेशों से अत्यन्त प्रभावित है। भारत बुद्ध धर्म के निकटतम सम्बन्ध में आता जा रहा है। मैं स्वयं अपने बाल्यकाल से सिद्धार्थ के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा पाता रहा हूँ।''

**कंबोडिया के संघराज की तीर्थ-यात्रा**—कंबोडिया के संघराज ने गत जून मास में लंका के अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन समाप्त होने पर भारत के बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा की। उन्होंने बुद्धगया, राजगृह, नालंदा एवं सारनाथ के दर्शन कर वायुयान द्वारा काशी से कलकत्ते के लिए प्रस्थान कर दिया। गर्मी के कारण अन्य तीर्थ स्थानों की यात्रा सम्भव न हुई।

सिंगापुर की चीनी-पार्टी भी तीर्थयात्रा के लिए आई और सब तीर्थस्थानों की यात्रा कर २७ जून को सारनाथ से सिंगापुर के लिए प्रस्थान की।

**शांतिनिकेतन में बर्मी बौद्ध अनुसन्धान केन्द्र**—शान्तिनिकेतन में बर्मा देशीय भिक्षु लोगों के अध्ययन एवं अनुसन्धान सम्बन्धी एक केन्द्र खोलने का आयोजन हो रहा है। बर्मा के एक प्रमुख बर्मी पत्र के संचालक यू० आंगमिन ने शान्तिनिकेतन में एक 'बर्मी-बौद्ध विहार' के निर्माणार्थ तीस हजार रुपये भी प्रदान किया है। इस समय शान्ति निकेतन में कई भिक्षु इस योजना को सफल बनाने में लगे हैं।

**भिक्षु संघरत्नजी की बर्मा यात्रा**—भारतीय महाबोधि सभा के उपमन्त्री भिक्षु संघरत्नजी गत जनवरी मास में पवित्र अस्थियों के साथ बर्मा गये। आपको बर्मा की संस्कृति, एवं रहन-सहन ने विशेष रूपसे आकर्षित किया। आप पवित्र अस्थियों के वापस चले आने पर भी वहीं रह गये और एक मास ध्यान-भावना में व्यतीत किये। आपको बर्मा में जो सबसे आकर्षक चीज मिली वह थी बौद्ध लोगों की श्रद्धा एवं वहाँ के भिक्षु लोगों की ध्यान-भावना की पद्धति। यद्यपि आप इस समय बर्मा से सारनाथ वापस आ गये हैं, किन्तु पुनः बर्मा जाने की आपकी जिज्ञासा बनी ही हुई है।

**विश्व बौद्ध धर्म की ओर**—हाल ही में इटली के भिक्षु लोकनाथ ने लंका की एक सभा में भाषण देते हुए कहा है कि अमेरिका-वासियों की दृष्टि बौद्ध धर्म की ओर लगी है, वे वैज्ञानिक बौद्ध धर्म से अधिक प्रभावित हैं। उन्होंने आगे 'मैं बौद्धभिक्षु क्यों हुआ ?' पर बोलते हुए कहा कि यद्यपि मेरा जन्म कैथोलिक धर्म में हुआ था, किन्तु भगवान् बुद्ध के उपदेशों का मेरे जीवन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मुझे भिक्षु हो जाना पड़ा। अब सारा विश्व बौद्ध धर्म की ओर आ रहा है। वह समय दूर नहीं है कि हमलोग सम्पूर्ण विश्व में बौद्ध धर्म की महान् प्रभुता देखेंगे।''

**कलकत्ता में ज्येष्ठ महोत्सव**—गत ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को कलकत्ता के धर्मराजिक विहार में स्थानीय बौद्धों द्वारा बड़ी धूमधाम के साथ ज्येष्ठ महोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर भगवान् बुद्ध की पुष्प, दीप, धूप आदि से पूजा की गई और आगत सभी बौद्धों को पंचशील-अष्टशील आदि दिया गया। भीड़ काफी इकट्ठी हो गई थी। सन्ध्या समय भदन्त एम० संघरत्नजी ने एक भाषण दिया तथा सबका स्वागत किया। उत्सव में चीनी, सिंहली, बर्मी, नेपाली और बंगाली बौद्ध सम्मिलित हुये थे। उक्त अवसर पर श्री जे० एन० चौधुरी ने इस पवित्र दिन की महत्ता को बतलाते हुए कहा—"इस पवित्र दिन महामहेन्द्र स्थविर ने लंका में बौद्ध धर्मका प्रथम उपदेश दिया था और उसे बुद्ध शासन का अधिकारी बनाया था। आज २२५७ वर्ष हुये कि तब से लेकर आज तक वह परम कल्याणकारी बुद्ध धर्म लंका का जातीय धर्म बना हुआ है।''

उत्सव में सिंगापुर से आये हुए चीनी बौद्ध भी सम्मिलित हुए थे। पीनांग बौद्ध समिति के प्रधान श्री थोम स्योंग ने भी बुद्ध धर्म के सिद्धांतों पर चीनी भाषा में प्रकाश डाला।

बौद्ध धर्म में दीक्षा—गत २९ जून को धर्मराजिक विहार कलकत्ता में बहुसंख्यक भिक्षु लोगों के समक्ष हबड़ा के श्री कुमुदविहारी राय तथा नदिया के श्री देवेन्द्र नाथ विश्वास ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। भारतीय महाबोधि सभा के उपमन्त्री भदन्त एम० संघरत्नजी ने उन्हें पंचशील देकर बौद्ध धर्म में दीक्षित किया।

**अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन**—लंका में गत २६ मई से ६ जून तक संसार के सभी बौद्ध राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक महासम्मेलन हुआ, जिसकी तैयारी कई वर्षों से हो रही थी, जो अपने ढंग का विचित्र और अभूतपूर्व सम्मेलन था। इस सम्मेलन में चीन, जापान, स्याम, बर्मा, काम्बोज, वीयतनाम, फ्रांस, इंगलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, फीनलैण्ड, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया, भारत, पाकिस्तान, नेपाल, तिब्बत, भूटान, सिक्किम, हवाई द्वीप, मलाया, अमेरिका आदि उन्तीस राष्ट्रों के प्रतिनिधि भाग लिए थे। सबके रहने एवं भोजन आदि का प्रबन्ध भी बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ था। लंका के बौद्ध गृहस्थों ने सारा प्रबन्ध किया था। एक एक मण्डल एक-एक स्थान पर रहता था और उसकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति प्रबन्धक करते थे।

सर्वप्रथम २५ मई को महनुवर (कैण्डी) में जुलूस के साथ उत्सव मनाया गया एवं दन्तधातु की पूजा की गई। सभी आगन्तुकों को कार्यकारिणी समिति की ओर से दोपहर में भोजन कराया गया। अपराह्न में ३ बजे दन्तधातु मन्दिर (दलदा मालिगाव) में सभा प्रारम्भ हुई। आरम्भ में श्री प्रियरत्न नायक स्थविर ने पालि भाषा में सबका स्वागत किया। तदुपरान्त असगिरि विहार के महानायक स्थविर का भाषण हुआ। उन्होंने अपने भाषण में लंका और बौद्ध धर्म की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए आधुनिक युग में प्रचार कार्य की आवश्यकता की ओर सबका ध्यान आकर्षित किया। तत्पश्चात् बर्मा के ऊ चान् टुन्, चीन के भिक्षु फाफों, भारत के श्री अरविन्द बरुआ और आनन्द कौसल्यायन, इटली के भिक्षु लोकनाथ और जापान के श्रीरीरी नाकायामा के भाषण हुए। लंका के वाणिज्य मंत्री श्री एच० डब्ल्यू० अमरसूरिय ने सम्पूर्ण उपस्थित लोगों को धन्यवाद दिया।

सन्ध्या समय चाय पीने के पश्चात् सब लोगों ने कोलम्बो के लिए प्रस्थान कर दिया।

इसी दिन २६ मई को कोलम्बो के रेस्-मैदान में लंका के प्रधान मंत्री श्री डी० एस० सेनानायक की अध्यक्षता में सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। उक्त अवसर पर काषाय वस्त्रों से सुशोभित हजारों भिक्षु उपस्थित थे। पहले भिक्षु लोगों ने परित्राण पाठ किया। तदुपरान्त विद्यालंकार परिवेण के प्रधान भिक्षु ने उपदेश दिया। लंका के स्वास्थ्य मंत्री श्री बण्डार नायक ने स्वागत-भाषण किया और महाबोधि सभा के अध्यक्ष परवाहर श्री वाजिरञान महास्थविर ने समस्त लंका के भिक्षु संघ की ओर से आगत प्रतिनिधियों को धन्यवाद दिया। तत्पश्चात् विभिन्न देशों से आये सन्देश पढ़कर सुनाये गये। उक्त अवसर पर लंका पधारे भारत के विधिमंत्री डा० भीमराव अम्बेडकर ने कहा—"इस समय भारत में प्रजातन्त्रवादी धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है और बौद्ध धर्म बिल्कुल ही प्रजातन्त्रवादी धर्म है, अतएव यह भारत के लिए अत्यन्त ही उपयुक्त धर्म है।"

इस सम्मेलन में अनेक प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए और छः उपसमितियों का निर्माण हुआ जो ग्रंथ प्रकाशन, प्रचार, विपत्ति-निवारण, धर्म-प्रचार, धर्मदूत-प्रेषण आदि कार्य करेंगी। आगन्तुक सभी प्रतिनिधियों को सीमा बन्धन, प्रदीप पूजा, भिक्षु-दीक्षा आदि लंका के सभी चारित्र दिखलाए गए एवं अनुराधपुर, पोलोन्नरुव, सीहगिरि आदि लंका के सभी प्रधान तीर्थ एवं दर्शनीय स्थानों का दर्शन कराया गया। यह विचित्र एवं आश्चर्यजनक सम्मेलन शान्ति पूर्वक समाप्त हुआ।

**लंदन में बौद्ध विहार की स्थापना**—लन्दन में शीघ्र ही एक बौद्ध विहार की स्थापना होगी,

जिसमें भगवान् बुद्ध की अस्थियाँ रखी जाँयेंगी। लन्दन विहार-समिति के उपाध्यक्ष ने अखिल विश्व बौद्ध सम्मेलन में उस विहार की स्थापना की योजना की प्रगति का वर्णन किया। आपने कहा कि लंका के प्रधान मंत्री श्री सेनानायक ने मुझसे कहा कि जहाँ तक हो सकेगा वे ब्रिटेन की सरकार से विहार स्थापना के लिए जमीन दिलवायेंगे।

कश्मीर में बौद्ध विहार—७ मई को लद्दाख के बड़े लामा श्री कुशक बकुल ने कश्मीर के प्रधान मंत्री शेख अब्दुल्ला से भेंट की, जिसमें उन्होंने श्रीनगर में एक विहार बनाने के लिए प्रार्थना की। शेख अब्दुल्ला ने झेलम नदी के तट पर सुन्दर भूमि देने का वचन दिया है। कहा जाता है कि धन एकत्र होने पर मट-निर्माण का कार्य आरम्भ हो जायगा।

बर्मा द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार—बर्मा बौद्ध धर्म के प्रचार की योजना कार्यान्वित करने जा रहा है। बौद्ध संस्थाओं की अखिल बर्मा परिषद् और महासंघ ने बर्मा के पहाड़ी क्षेत्रों में स्थानीय नेताओं की सहायता से बौद्ध धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया है। स्याम तथा कलकत्ता के लिए शिष्टमण्डल भेजे गये हैं। स्याम से भी एक शिष्ट मण्डल शीघ्र ही बर्मा पहुँचेगा।

आसाम का चार अहुँ परिवार बौद्ध बना—अग्रश्रावकों की पवित्र अस्थियों के देशंपाणी में पहुँचने पर आसाम का चार अहुँ परिवार बुद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध बन गया। बौद्ध हुए लोगों में अहुँ जाति के प्रसिद्ध नेता श्री नाथूराम गोगोई, अखिल आसाम अहुँ जाति के सभापति श्री दुर्गानाथ गोगोई, उपप्रधान मन्त्री तथा मेन्दागुरी हाई स्कूल के प्रधान अध्यापक श्री जयचन्द बाहगोहमन उल्लेखनीय हैं।

बौद्ध दीक्षा लेने के पश्चात् शांति-निकेतन के चीन-भवन के प्रो० थान यून सान, तथा महाबोधि सभा के महामन्त्री श्री देवप्रियवलि सिंह ने उन लोगों को हार्दिक धन्यवाद दिया एवं उनकी मंगल कामना की।

स्याम द्वारा बुद्ध-मूर्ति का दान—वैशाख पूर्णिमा के शुभ अवसर पर स्याम की बौद्ध समिति द्वारा कलकत्ता के प्रसिद्ध धर्माङ्कुर विहार को एक भगवान् बुद्ध की भव्य मूर्ति प्रदान की गई, जिसकी स्थापना उसी दिन उक्त विहार में हुई।

बौद्ध विहारों के संरक्षण के लिए भारत द्वारा सहायता—भारत सरकार ने हिन्देशिया के बौद्ध-विहारों के संरक्षण एवं सुधार के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की है। विचार विमर्श एवं समुचित देख-रेख के लिए भारत ने एक पुरातत्वज्ञ को भी भेजने का वचन दिया है। भारत सरकार यह सब इसलिए करती है कि हिन्देशिया के स्मारक एवं अवशेषों की बहुत कुछ भारतीय इतिहास से लगाव है। इससे दोनों प्रजातंत्र देशों का मैत्री-सम्बन्ध दृढ़ होगा।

### विश्व की अत्यन्त सुन्दर बुद्ध-मूर्ति

जोग्याकार्ता,

१२ जून। राष्ट्रपति सुकर्नो आज नेहरूजी को बाहर के रमणीय स्थानों को दिखाने के लिए प्रसिद्ध स्मारक मेण्डुट और बोरोबुदुर लिवा गये। वहाँ पर नेहरूजी ने तीन मूर्तियों को आध घण्टे तक निरीक्षण किया। मध्य की मूर्ति गौतम बुद्ध की है। यह मूर्ति एक ही ठोस पत्थर की बनी है।

राष्ट्रपति सुकर्नो ने कहा कि यह मूर्ति विश्व में अत्यन्त सुन्दर मूर्ति है।

पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर जनरल डा० चक्रवर्ती ने जो नेहरूजी के साथ थे, बताया कि यह मूर्ति बुद्ध के 'धर्मचक्र मुद्रा' की है। इस मूर्ति के दोनों ओर दो बोधिसत्व हैं।

नेहरूजी भगवान् बुद्ध की शान्त मुद्रा की प्रशंसा करते रहे। आप ने सौगज की दूरी पर स्थित मन्दिर और आधुनिक ध्वंसावशेष को देखा जो डचों की पुलिस काररवाई के समय ध्वस्त किये गये थे।

भारत का सर्वोत्कृष्ट सचित्र मासिक

वार्षिक मूल्य ६॥), नमूने की प्रति दस आने।

# "कृषि-संसार"

के

प्रसिद्ध विशेषाङ्क यह हैं:—

गन्ना विशेषांक १॥) अधिक उत्पादन विशेषाङ्क १)

१. कृषि पर वैज्ञानिक तथा सुन्दर, खोजपूर्ण लेख पढ़िये।
२. देश विदेशों के कृषि समाचार पढ़िये।
३. देश की कृषि सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कीजिये।
४. देश के किसानों का प्रोग्राम पढ़िये।
५. नई २ खोजों और सारगर्भित विचारों का अध्ययन कीजिये।
६. आकर्षक, सुन्दर चित्रों तथा रोचक, सरस कविताओं का आस्वादन कीजिये।
७. कृषि संसार के प्रकाशन विभाग से कृषि सम्बन्धी नई वैज्ञानिक पुस्तकों की जानकारी प्राप्त कीजिये।

**पता—"कृषि-संसार" कार्यालय, बिजनौर ( यू० पी० )**

सचित्र मासिक पत्रिका—

'इतिहास' का नया आयोजन

# बृहत्तर भारत विशेषांक

**अगस्त १९५० में सजधज से प्रकाशित होगा—**

**पृष्ठ संख्या १२८—अनेक चित्रों से सुशोभित, मूल्य १)**

विशेषांक के लिए डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, क्यूरेटर, नेशनल म्यूजियम आफ इंडिया, डा. बी. सी. छाबरा, गवर्नमेन्ट एपिग्राफिस्ट फार इंडिया, डा० रघुबीर, भूतपूर्व सदस्य भारतीय संसद; डा० लोकेशचन्द्र डी० लिट्०; प्रो० दशरथ शर्मा एम० ए० लिट्; प्रो० अम्बाप्रसाद एम० ए०; प्रो० बलराज मधोक एम० ए०; स्वामी सत्यदेव परिव्राजक; श्री० नरेन्द्रकुमार एम ए० बी० टी०; सम्पा० ( वेद सन्देश )—डा० आर० एस० अग्रवाल—प्रभृति भारत प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वानों के विशेष लेख प्राप्त हो चुके हैं।

**वार्षिक शुल्क ५) रु०**

भेजकर आप किसी भी अंक से ग्राहक बन सकते हैं। शैक्षणिक संस्था, स्कूल, कालेज, लायब्रेरी आदि से रियायती रूप में वार्षिक शुल्क ४) रु० होगा।

यह अंक विज्ञापनदाताओं के लिए स्वर्ण अवसर है। विशेष जानकारी के लिए अभिकर्ता एवं विज्ञापनदाता पत्र व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—

**इतिहास कार्यालय, कटरा बड़ियान, दिल्ली।**

"धर्मदूत"

का

# "अखिल विश्व बौद्ध संस्कृति अंक"

हम बुद्धाब्द २५०० ( सन् १९५६ ) के शुभावसर पर "धर्मदूत" का एक सुन्दर और विशाल अंक प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं, जिसमें विश्व के सभी देशों के बौद्धों का परिचय रहेगा। सब देशों के बौद्धों की कला, पुरातत्व, इतिहास, भेद, आचरण, वंश परम्परा, दार्शनिक-गवेषणा, प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रकार की अवस्था के वर्णन के साथ बौद्ध धर्म के पालि और संस्कृत के अतिरिक्त सर्व देशीय बौद्धों की भाषाओं के ग्रन्थों का भी परिचय रहेगा।

स्थविरवाद के साथ सभी निकायों के धार्मिक सम्बन्ध तथा दार्शनिक विशेषताओं की गवेषणात्मक व्याख्या रहेगी। यह अंक हरेक बौद्ध देशों के जातीय एवं धार्मिक चित्रों, रीति-रिवाजों एवं विभिन्न अन्वेषणात्मक बातों से परिपूर्ण रहेगा।

हमारे ग्रन्थों में बुद्धाब्द २५०० का बड़ा महत्व वर्णित है। यही वह समय है जब से पुनः बौद्ध धर्म का बिगुल संसार में बड़े वेग से बजेगा और फिर एक बार सारा जगत बौद्ध धर्म की शरण आयेगा। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस अवसर पर अपना एक सुन्दर कार्यक्रम बनायें। उक्त कार्य के लिये हमें कम से कम एक लाख रुपये की आवश्यकता है। हम इस भव्य एवं पुनीत आयोजन की सफलता के लिये देशी तथा विदेशी ( विशेष कर हिन्दी भाषा-भाषी ) धार्मिक, संस्कृति-प्रेमी एवं दानी व्यक्तियों से निवेदन करते हैं कि वे मुक्तहस्त से हमारी सहायता करें।

दाताओं का नाम 'धर्मदूत' में सदा प्रकाशित होता रहेगा। थोड़ी या बहुत जो भी रकम सहर्ष स्वीकार की जायेगी।

निवेदक—

व्यवस्थापक—"धर्मदूत"

---

## मण्डल की ताज़ी पुस्तकें

### पठनीय, मननीय और संग्रहणीय

१. **पन्द्रह अगस्त के बाद**—महात्मा गांधी के पन्द्रह अगस्त १९४७ से अन्तिम लेख तक का संग्रह। आजादी तथा उससे पैदा हुई समस्याओं पर सम्यक् विचार। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ २४०, मूल्य २)

२. **धर्मनीति**—जीवन नीति और उसके पालन सम्बन्धी नियम उपनियम का विवेचन करने-वाली महात्मा गांधी की चार पुस्तकों का संग्रह। बढ़िया छपाई व कपड़े की जिल्द, मूल्य २)

३. **बापू की कारावास-कहानी**—लेखिका डा० सुशीला नैयर। आगाखाँ महल में बापू के बन्दी-जीवन के इक्कीस महीनों का हृदय-स्पर्शी इतिहास, २८ चित्र, सुन्दर छपाई, पृष्ठ ४८०, मूल्य १०)

४. **सर्वोदय विचार**—आचार्य विनोबा: सर्वोदय और उसके सिद्धान्तों का सूक्ष्म विश्लेषण, १।।)

५. **पंचदशी**—भारत के चिन्तकों और साहित्यकारों के पन्द्रह उच्चकोटिके निबन्धों का संग्रह, १।।)

मण्डल से प्रकाशित 'जीवन साहित्य' के ग्राहक बनने से ये तथा मण्डल की अन्य पुस्तकें आपको रियायती मूल्य में मिलेंगी। पत्र का वार्षिक मूल्य ४)।

व्यवस्थापक— **सस्ता साहित्य मण्डल**

नयी दिल्ली

# JAHAR LALL PANNA LALL & Co.

**167 Dasaswamedh Road, Banaras.**

*Branch :*
**College Street Market**
**CALCUTTA**
**Phone B. B. 1909**

**OVER CENTURY FAMOUS**
**HOUSE**
*FOR*

*Branch :*
**Katra Aluwala,**
**AMRITSAR**

## BANARASI & Other Silk Saris etc.

**Stock up-to-date designs of this year.**
**No Middlemen Profit from Factory direct to Customers**

# जहरलाल पन्नालाल एण्ड कों

शाखा
**कालेज स्ट्रीट मार्केट**
कलकत्ता
बी० बी० १९०९

दशाश्वमेध रोड, बनारस
**बनारसी और रेशमी कपड़े**
की
भारत प्रसिद्ध प्रस्तुत कारक और विक्रेता

शाखा
**कटरा आलूवाला**
अमृतसर


प्रकाशक—धर्मालोक, महाबोधि सभा, सारनाथ, (बनारस)
मुद्रक—ओम प्रकाश कपूर, ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, कबीर चौरा, बनारस।